www.kahaar.in

ISSN : 2394-3912
त्रैमासिक, अंक: 2(4), अक्टूबर-दिसम्बर, 2015
मूल्य : 25 रुपये

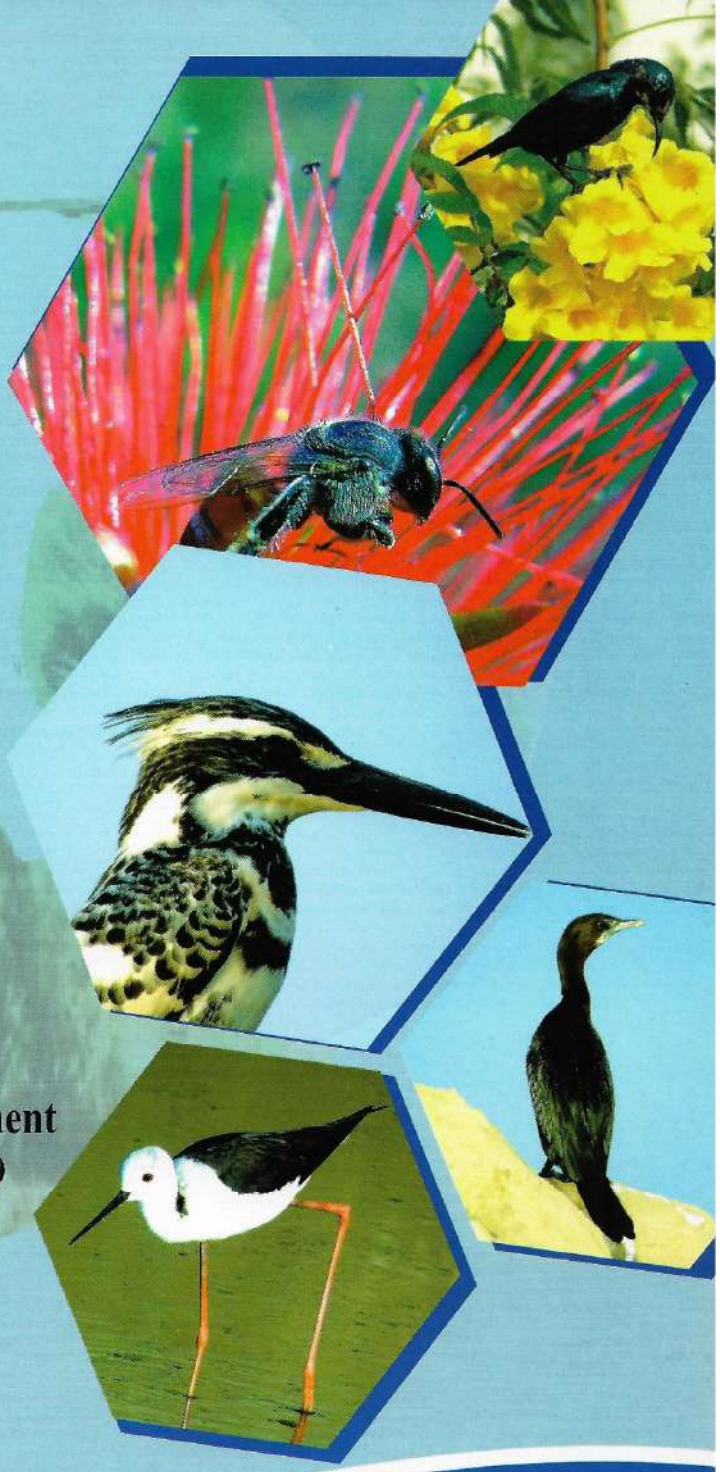

कहार

टिकाऊ विकास के ज्ञान का वाहक

(जनसामान्य के लिए बहुभाषाई पत्रिका)

KAHAAR

A carrier for knowledge of sustainable development

(A multilingual magazine for common people)

प्रकाशक

प्रोफेसर एच्. एस. श्रीवास्तव फाउंडेशन फॉर साइंस एंड सोसाइटी, लखनऊ
www.phssfoundation.org.in

पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ
www.prithvipur.org

द सोसाइटी फॉर साइंस ऑफ क्लाइमेट चेंज एंड सस्टेनेबल एनवायरनमेंट, दिल्ली
www.ssceindia.org

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना (कुशीनगर)

समावेशी विकास की ग्रामीण पहल

(Rural Initiative for Inclusive Development)

भागीदार संस्थाऐं

प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन, लखनऊ (www.phssfoundation.org.in)

पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ (www.prithvipur.org)

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना (कुशीनगर)

उद्देश्य • सम्यक् शिक्षा • हरित उद्योग • कम लागत की खेती • समावेशी स्वास्थ्य लाभ • मानवीय संस्कार • लोक कलाएँ • भागीदारी की ताकत • आनन्द की खोज

वर्तमान कार्यक्रम • 'कहार' पत्रिका का प्रकाशन • 'कहार' लाइब्रेरियों की स्थापना • 'किसान' खेती पद्धति का विकास • विवेकानन्द स्कूलों की स्थापना एवं प्रबन्धन • अभावग्रस्त लोगों की मदद • सामर्थ्य विकास

भविष्य की योजनाएं • 'आधार' नवाचार एवं कौशल विकास स्कूलों की स्थापना एवं प्रबन्धन • 'अपना स्वास्थ अपने हाथ' स्वास्थ्य कार्यक्रमों का विकास • 'आनन्द' पार्कों का निर्माण एवं रखरखाव • 'विकास' पाक्षिक अखबार का प्रकाशन • 'प्रकृति' वनों का विकास एवं संरक्षण • 'उल्लास' कला समूहों का निर्माण एवं संचालन

ISSN : 2394-3912

कहार

संपादक
प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह, लखनऊ

सह–सम्पादक
प्रो. रिपू सूदन सिंह, लखनऊ
डॉ. अर्चना सेंगर सिंह, न्यूजर्सी
डॉ. वेंकटेश दत्ता, लखनऊ
डॉ. राशिदा अतहर, लखनऊ
डॉ. कुलदीप बौद्ध, राँची
डॉ. संजीव कुमार, किशनगढ़ (राज.)

उप–सम्पादक
श्री महेश कुमार, लखनऊ
डा. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह, लखनऊ
श्री सुनीत कुमार यादव, वाराणसी
सुश्री स्वाति सचदेव, लखनऊ
श्री अम्बुज मिश्र, नई दिल्ली
श्री चिन्मय श्रीवास्तव, लखनऊ

सलाहकार मण्डल
डॉ. पी. के. सेठ, लखनऊ
डा. पी. वी. साने, जलगाँव
डॉ. डी. सी. उप्रेती, दिल्ली
प्रो. एस. बी. अग्रवाल, वाराणसी
श्री राम प्रसाद मणि त्रिपाठी, गोरखपुर
डॉ. एस. के. भार्गव, लखनऊ
प्रो. रामदेव शुक्ल, गोरखपुर
श्री केदारनाथ मिश्र, गाँव चखनी (कुशीनगर)
डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, बालापार, गोरखपुर
डॉ. कृष्ण गोपाल, लखनऊ
डॉ. रणवीर दहिया, रोहतक
प्रो. राजा वशिष्ठ त्रिपाठी, वाराणसी
डॉ. एन. रघुराम, दिल्ली
डॉ. सुधा वशिष्ठ, लखनऊ
डॉ. सिराज वजीह, गोरखपुर
श्री शशि शेखर सिंह, लखनऊ
डॉ. एस. एम. प्रसाद, लखनऊ
डॉ. चतुर्भुज सिंह सेंगर, पडरौना
डॉ. एस. के. प्रभुजी, गोरखपुर
डा. कुशेन्द्र मिश्र, लखनऊ
डॉ. सुमन कुमार सिन्हा, गोरखपुर
डॉ. मालविका श्रीवास्तव, गोरखपुर
प्रो. हरीश आर्य, रोहतक
डॉ. स्मृति सिंह, लखनऊ
डॉ. ए. अरूणाचलम, नई दिल्ली
श्रीमती शीला सिंह, लखनऊ
डॉ. धीरज सिंह, नोएडा
इं. तरूण सेंगर, शिकागो
डॉ. निहारिका शंकर, नोएडा
डॉ. पूनम सेंगर, रोहतक

आवरण फोटो
श्री रजनीकान्त वर्मा, किशनगढ़, राजस्थान

प्रबन्धकीय सहयोग
श्री अशोक दत्ता, नई दिल्ली
श्री अंचल जैन, लखनऊ

सम्पादकीय सहयोग
श्री रंजीत शर्मा, लखनऊ
श्री विवेक कुमार, लखनऊ

संपादकीय पता
247, सेक्टर–2, उद्यान–II, एल्डेको, रायबरेली रोड,
लखनऊ–226 025, भारत
ई मेल : kahaarmagazine@gmail.com
वेबसाइट : www.kahaar.in
https://www.facebook.com/kahaarmagazine
www.twitter.com@kahaarmagazine

		व्यक्तिगत	संस्थागत
सहयोग राशि : एक प्रति	:	25 रुपये	50 रुपये
वार्षिक	:	80 रुपये	160 रुपये
त्रैवार्षिक	:	250 रुपये	500 रुपये

सहयोग राशि 'प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटी, लखनऊ' के नाम भेजें।

घोषणा
लेखकों के विचार से 'कहार' की टीम का सहमत होना जरूरी नहीं। लेखकों द्वारा दी गई जानकारी में होने वाली तथ्यात्मक भूलों के लिए 'कहार' की टीम जिम्मेदार नहीं होगी।

लेखकों के लिए

वैचारिक रचनाओं में आवश्यक संदर्भ भी दें एवं इन संदर्भों का विस्तार रचना के अन्त में प्रस्तुत करें। मौलिक रचनाओं के लिए रचना के साथ रचना के स्वलिखित, मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाणपत्र अवश्य दें। लेखक पासपोर्ट साइज फोटो भी भेंजे। लेखकों को प्रकाशित लेख पर एक वर्ष की पत्रिका भेजी जायेगी। रचनाऐं English में Times New Roman (12 Point) तथा हिन्दी के लिए कृति देव 10 में Word Format (Window 2003) में टाइप करें। तस्वीरें, चित्र, रेखाचित्र आदि J.P.G. Format में भेंजे। चार पृष्ठों तक रंगीन पृष्ठ छापने के लिए रु. 5000/– की सहयोग राशि रचना के साथ ही भेंजे।

विज्ञापन के लिए

विज्ञापन की विषय वस्तु के साथ ही भुगतान 'प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटी, लखनऊ' के नाम चेक द्वारा सम्पादकीय पते पर भेजें।

रुपये 5000/- पूरा पृष्ठ रुपये 3000/- आधा पृष्ठ
रुपये 9000/- पूरा पृष्ठ (रंगीन) रुपये 6000/- आधा पृष्ठ (रंगीन)

Advertisement Tariff

Rs. 5000/- Full Page (B/W) Rs. 3000/- Half Page (B/W)
Rs. 9000/- Full Page (Color) Rs. 6000/- Half Page (Color)

कहार एक पारम्परिक मनुष्य वाहक के लिए प्राचीन देशज सम्बोधन है। कहार मित्रों, रिश्तेदारों एवं परिचितों के घर से दूसरे के घर अन्न, वस्त्र, खान–पान की चीजें, तीज–त्यौहार, जीवन–मरण, शादी–ब्याह, हर अच्छे और बुरे अवसर पर कन्धे पर ढोकर ले जाता है।

विषय सूची

आलेख	लेखक	पृष्ठ सं.
• विकास के रास्ते पर एक नजर	सम्पादकीय	3
• मिल के चलो (कविता)	प्रेम धवन	4
• ज़िंदगी की जीत में यकीन कर (कविता)	इप्टा	4
• आपके पत्र		5
• विवेकानन्द विद्यालय मुसहर टोली, जंगल बेलवा, पडरौना–कुशीनगर एक अभिनव प्रयोग : (मूस से माउस तक)	डॉ. सी.बी. सिंह सेंगर	6
• A New Era of Opportunity	Ban Ki-moon	8
• जलवायु न्याय की डगर पर	एन.के. सिंह	10
• अक्सर (कविता)	राणा प्रताप सिंह	11
• जलवायु संकट	श्री डी. रघुनन्दन	12
• ओज़ोन परत : एक प्राकृतिक सुरक्षा कवच	डा. शैलेष कुमार मिश्र एवं डा. अखिलेश कुमार मिश्र	16
• विकास का विष और नीलकंठ के अंश	राणा प्रताप सिंह, महेश कुमार, स्वाती सचदेव	18
• क्लोरपाइरीफॉस कीटनाशक से गैर लक्ष्य जीवों पर दुष्प्रभाव	डा. आभा मिश्रा एवं परमेश्वर सिंह	20
• भाग्य और कर्म	रमा शंकर मिश्र 'शास्त्री'	22
• मलाला युसुफ़ज़ई	वीकीपिडिया	23
• भारतीय समाज में कन्या–भ्रूण हत्या के सामाजिक कारण	डॉ. अर्चना सेंगर सिंह	25
• सर्वभौमिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक	डॉ. सरफ़राज़ अहमद	26
• इलेक्ट्रॉनिक मीडिया समाज और खबरें	डा. अर्चना सेंगर सिंह	28
• इक्कीसवीं सदी में अंतरजाल (इन्टरनेट) पर फैलता हिन्दी संसार	डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह	30
• इन्टरनेट के युग में सूचना प्रौद्योगिकी और हिन्दी	अनीता	32
• कभी न खत्म होने वाली कहानी	प्रो. एस. सिवादास	34
• शौचालयः साझी दुनिया–साझे गढ्ढे	राणा प्रताप सिंह	37
• किसान और जमीन	राणा प्रताप सिंह	37
• किसानों की कसक और बदलता मौसम	अर्चना सेंगर सिंह	40
• सूरज की छुपम छुपाई, देखों कैसी सर्दी आई (कविता)	डॉ अर्चना सेंगर सिंह	40
• अनजानी सी खनकार (कविता)	शुभम चन्द्रा	41
• Role of Green advertising for Sustainable Development	Ankit Dixit	41
• Bacteria within Our Body Matters	Shovit Ranjan	42
• Berberis asiatica Roxb.: an endemic ayurvedic plant of Himalayas	A.C. Rathore, Anand K. Gupta, J. Jayaprakash, J.M.S. Tomar and O.P. Chaturvedi	44
• Environmental Dimension of Mandatory Provision of Corporate Social Responsibility	Purnima Singh	45
• To God (Poem)	K. V. Subbaram	46
• Resurrection (Poem)	K. V. Subbaram	46
• कहार के संस्थाओं की गतिविधियाँ		47

ISSN : 2394-3912

सम्पादकीय

विकास के रास्ते पर एक नज़र

गँहगाई बढ़ रही है, और इच्छाएँ भी' बेहतर जीवन स्तर खान–पान, कपड़े, दवाईयाँ, मकान, शौचालय, साफ–सफाई, सड़कें, शिक्षा, अस्पताल, टी.वी., मोबाइल फोन, सैर–सपाटा, पानी की निकासी, कचरे का प्रबंधन इत्यादि की जरूरतें बढ़ रही है। यही तो विकास है। पर दाले महँगी हो रही हैं और मोबाइल सस्ता हो रहा है। देश की आधी आबादी के पास मोबाईल पहुँच रहा है, परन्तु दाले नहीं पहुँच रही है। लोगों को मोबाईल मिलने से सहूलियत तो बढ़ गयी है, पर दालों के न मिलने से शारीरिक कमजोरी और बीमारियाँ भी बढ़ गयी हैं। यह सही विकास नही है, कहीं कुछ गड़बड़ है, जिसे समझने और दूर करने की जरूरत है।

खाद्य वस्तुओं की महँगाई को कम उत्पादन, अधिक माँग यानि डिमाण्ड–सप्लाई के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त से जोड़ कर देखा जाता है। पर अर्थशास्त्र यह नहीं देख पा रहा है, कि अगर खाद्य पदार्थो की माँग अधिक है, तो उत्पादन और सप्लाई क्यों नहीं है इस कड़ी का टूटना बाजार की चिंता नही है, इसलिए अर्थशास्त्र की भी नहीं। चीजों और घटनाओं को उनके तमाम आयामों और उनके बीच के तमाम तरह के अर्न्तसम्बन्धों को ज्ञात का उदाहरण लेकर और अज्ञात का अन्दाजा लगा कर लगातार समझते रहना, उन पर नये प्रश्न दागना तथा नए जबावों की तलाश करते रहना विज्ञान की संस्कृति है। पर विज्ञान का तंत्र भी बाजारवाद के प्रभाव में सिर्फ तात्कालिक परिणामों और इकहरे कारणों को ढूढ़ने में अपनी अधिकाधिक ताकत लगा रहा है, और बड़े कालातीत तथा बुनियादी सवालों से जूझने से परहेज कर रहा है। यह चिन्तनीय है। तकनीकी और नवाचारी तकनीकी मनुष्य की सुविधाएँ बढ़ाने में अहम् भूमिका निभाते हैं, पर हमें नहीं भूलना चाहिए की विज्ञान, तकनीकी एवं नवाचार की जननी है। विज्ञान के महत्व और इसकी संस्कृति को कमतर कर देने से तकनीकी का विकास और उसकी निरन्तरता तथा नवाचार की सम्भावनाएँ कमजोर होती चली जाएँगी।

दालो के महँगे होने को एक प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करके, मैं विकास के इस स्वरूप पर बात करना चाहता हूँ।

दाल, सब्जियाँ, फल, अनाज, दूध और मांसाहारी भोजन के जानवर, पक्षियाँ तथा मछलियाँ किसान उगाते है, तथा अब उनमें से कुछ अधिक कीमत वाली चीजें, कुछ व्यापार समूह उगाने लगें हैं। भारत के संदर्भ में और भारत के बाहर भी दुनिया की बड़ी आबादी के संदर्भ में देखें तो किसानो के पास प्राकृतिक और आर्थिक साधन बहुत कम है, और वे अत्यन्त गरीबी का जीवन जी रहे है। शहरों की मलिन बस्तियों में रहने वाले गरीब और बदहाल लोग भी मूलतः गाँवों की यही गरीब आबादी है, जो शहरों मे काम की तलाश में आयी है। तो प्रश्न यह है, कि यदि अधिक माँग है, तो उसकी पैदावार किसान क्यों नहीं कर पा रहा है?

गाँवों पर नये विमर्श की जरूरत है। हर सभ्यता, संस्कृति और क्षेत्र विशेष की समय सापेक्ष कुछ खूबियाँ होती हैं, और कुछ खामियाँ। जिन गाँवों को हमारी पीढ़ी के लोग भावुक होकर याद करते है, उसमें रिश्तो में बेहतर लगाव तो था, परन्तु छुआ छूत, औरतों का पर्दा, भुखमरी, झगड़े, शोषण, बीमारियाँ जिस स्तर पर थे, उसे याद करना सुखद तो नहीं कहा जा सकता। जो लोग उन गाँवों को छोड़कर शहरों में गये, उन्होंने या तो गाँवों को हिकारत से देखतें हुए याद नही किया, या भावुकता से पुराने रिश्तों को याद बस कर लिया। कभी–कभार का आना–जाना रखा, परन्तु कोई लम्बा प्रवास और व्यवहारिक स्तर का भावनात्मक लगाव नहीं रखा। जो लोग लौट कर गाँवों में बसे, वहाँ जाकर खुश नहीं रहते। शेष जो शहरों में बस पाये, बस गये और शहरो का रहन, सहन, वहाँ की संस्कृति और वहाँ का जीवन सहर्ष अपना लिया।

क्या गाँव, क्या शहर, सभी ने पुराने तरह वस्त्रों को नए तरह के वस्त्रों से बदल दिया। पुराने घरों की जगह नये तरह के (पश्चिमी तरह का) घर बनने लगे हैं। जमीन पर खाना बनाने और बैठ कर खाने की जगह, लोगों ने स्लैब या तख्त वाली रसोई और मेज, या तख्त पर खाना शुरू कर दिया। यह सब कुछ भारतीयों ने अंग्रेजों की सभ्यता से लिया। सभ्यताओं का विकास अधिक सहूलियत वाले रहन सहन को अपनाने के साथ ही होता रहता है। गाँवों को उस पुराने रूप में देखने की इच्छा मुझे न तो व्यवहारिक लगती है, न ही उचित।

गाँवों में आज भी बहुत कुछ अच्छा है, मसलन खुली जगह, हरियाली, साफ हवा, लोगों का आपस में एक–दूसरें से जुड़ाव महसूस करना। छुआछूत को बहुत हद तक नकार दिया जाना, औरतों की बन्दिशों का कम होना। लड़कियों की शिक्षा को भी लड़कों की शिक्षा की तरह महत्व देना आदि। गाँवों में अनेकों नई बुराईयां भी पनपी हैं। मसलन छोटी–बड़ी बेईमानी, अपनों के बीच की ईर्ष्या, श्रम से दूर होना तथा काम करने को हीन मानना, जीवन शैली से जुड़ी बीमारियों का बढ़ना। कीटनाशकों, रासायनिक खादो तथा जहरीले कीट नाशकों के अनियंत्रित प्रयोग से हवा, मिट्टी और पानी का विषाक्त होना, अभी भी बहुतायत में रास्तों और खेतों में मल–मूत्र करना तथा सफाई पर अधिक ध्यान न देना। छोटी–छोटी बातों पर लड़ पड़ना तथा बार–बार कोर्ट–कचहरी जाना। त्योहारों पर सामूहिक उल्लास का समाप्त होते जाना। पेड़ो और जानवरों का घटतें जाना। गरीबों, असहायों और बुजुर्गो के लिए संवेदनहीनता का कम होते जाना आदि।

गाँवों में सड़क, पार्क, वन, बगीचे, अच्छे स्कूल, अच्छे अस्पताल नहीं हैं। शराब, तम्बाकू, गुटका तथा अन्य तरह के नशे के नशेड़ियों की भरमार है। अज्ञानता और असहजता जनित अहंकार तो बहुत है, पर अपने हित के लिए हर कदम पर चालाकी करते लोगों को दरअसल पता ही नहीं होता, कि उनका टिकाऊ हित किसमें है।

शहरों में भी सब कुछ अच्छा नहीं है। सड़कें है, पर भीड़ है। पानी तों मशीनों से साफ हो जाता है, पर हवा किस मशीन से साफ हो। नदियाँ जहरीली हो गयी है। हवा की साँस घुट रही है। अस्पताल है, पर एक उम्र के बाद दवाईयों पर ही जीवन टिका रहता है।

शहर और गाँवों दोनों को एक दूसरे की भी जरूरत है, तथा दोनों को कुछ छोड़ने और कुछ नया अपनाने की जरूरत है। शहर और गाँव का बटवारा न हो, दोनों के बीच अधिक घनिष्ठता और अधिक आवाजाही हो। हमें गाँव भी चाहिए, कस्बे भी, शहर भी और मेट्रोपोलिटन भी। सबकी खूबियाँ सब अपनाएँ। सबकी खमियां सब त्यागे। शहर छोड़कर गये लोग गाँव आये और आत्मीयता के साथ रहें। गाँवों से एक रागात्मक रिश्ता बनाएँ। जो उन्होंने शहर से धन और ज्ञान पाया है, उसका एक हिस्सा गाँव को भी दे, जिसने उन्हें जीवन दिया, अन्न दिया, हवा दिया, स्नेह दिया, शुरूआती संस्कार दिया और प्रारम्भिक ज्ञान दिया। जो–जो गाँवों से लिया उसका देय देने की बारी आयी, तो हाथ झटक कर भाग जाना कायरता और मक्कारी है। गाँवों को गाली नहीं, प्यार चाहिए, सम्मान चाहिए, देख रेख चाहिए। गाँवों से हम अपना अनुभव और ज्ञान बाँटे। लोगों की भागीदारी से आवश्यक साधन और सुविधाएँ विकसित करें। लोगों के बीच सही और स्वामाविक नेतृत्व निकलें और राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय प्राकृतिक एवं आर्थिक स्त्रोतों से अपना हिस्सा माँगने की क्षमता विकसित करें। सरकारी छलनी के छेदों को बन्द करने का कौशल विकसित हो, जिससे गाँवों को आने वाला सारा धन बह कर गलत जगहों पर गलत लोगों तक चला जाता है। शहर से नौकरियों से रिटायर लोग गॉव आयें और युवाओं का मार्गदर्शन तथा उनकी क्षमता निर्माण को बढ़ने में मदद करे, तो उन्हें भी अच्छा लगेगा और गॉवों को भी उनका देय मिलेगा।

गाँवो पर नये दृष्टि तथा नये प्रयासों की जरूरत है।

राणा प्रताप

(राणा प्रताप सिंह)

मिल के चलो

ये वक्त की आवाज़ है, मिल के चलो
ये ज़िन्दगी का राज़ है, मिल के चलो
चलो भाई, मिल के चलो–3
आज दिल की रंजिशें मिटा के आ....
आज भेद–भाव सब भुला के आ....
आज़ादी से है प्यार जिन्हें देश से है प्रेम
कदम–कदम से और दिल से दिल मिला के आ....
मिल के चलो....

जैसे सुर से सुर मिले हो राज के
जैसे शोले बन के बढ़ें आग के
जिस तरह चिराग से जले चिराग
ऐसे चलें भेद तेरा मेरा त्याग के।
मिल के चलो.....
ये भूख क्यूं ये जुल्म का ये ज़ोर क्यूं
ये जंग–जंग–जंग का है शोर क्यूं
हर इक नज़र बुझी–बुझी हरेक दिल उदास
बहुत फरेब खाए हम और फरेब क्यूं।
मिल के चलो.....

प्रेम धवन, इप्टा

ज़िंदगी की जीत में यकीन कर

तू ज़िन्दा है तो ज़िन्दगी की जीत में यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर।

सुबह शाम के रंगे हुए गगन को चूमकर
तू सुन ज़मीन गा रही है कब से झूम–झूमकर
तू आ मेरा शृंगार कर तू आ मुझे हसीन कर
अगर कहीं है.....

हज़ार भेष धर के आई मौत तेरे द्वार पर
मगर तुझे न छल सकी चली गई वो हारकर
नई सुबह के संग सदा तुझे मिली नई उमर
अगर कहीं है....

ये ग़म के और चार दिन सितम के और चार दिन
ये दिन भी जाएंगे गुज़र गुज़र गए हज़ार दिन
कभी तो होगी इस चमन में भी बहार की नज़र
अगर कहीं है.....

इप्टा

ज्ञान की खोज के लिए विज्ञान का तरीका उत्तम तरीका है। परन्तु इसके प्रसार के लिए कला और साहित्य के साधनों की आवश्यकता होती है। यह समझना भी आवश्यक है कि ज्ञान का आनन्द लेने के लिए और उसके मानवीय तथा प्राकृतिक उपयोग के लिए एक समर्पित आत्म चिंतन की जरूरत होती है।

राणा प्रताप सिंह

ISSN : 2394-3912

आपके पत्र

संपादक महोदय जी,

कहार पत्रिका का अप्रैल–सितम्बर, 2015 का अंक हमने पढ़ा। इस अंक का लेख "मछलियों का औषधीय महत्व" बहुत ही रोचक व ज्ञानवर्धक लगा है। इस शोध में मछलियों के सेवन द्वारा कुछ प्रमुख बीमारियों की रोकथाम के बारे में कई नई जानकारियाँ हमें प्राप्त हुई हैं। इसके अलवा इस अंक में कई भाषाओं जैसे हिन्दी, भोजपुरी एवं अवधी में प्रकाशित कविताएँ हमें बहुत ही रोचक लगीं।

हमारी तरफ से सम्पादक मण्डल को ढेर सारी शुभकामनाएँ।

श्री पवन यादव
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
किशनगढ़, राजस्थान

संपादक महोदय जी,

सादर नमस्कार।

'कहार' पत्रिका का हर अंक अपने साथ नई ज्ञानवर्धक जानकारियां लिये हुये आती हैं। मैं इसके लिए सभी संपादक मण्डल को एक धन्यवाद कहना चाहती हूँ। इस पत्रिका में प्रकाशित लेख "वर्तमान एलौपथी चिकित्सा शिक्षा प्रणाली और आम जनता" बहुत ही रोचक व आम लोगों के लिए ज्ञानवर्धक लेख हैं। इस लेख के द्वारा बीमारियों को दूर करने में एलोपैथी के योगदान के बारे में आम लोगों को बहुत ही सरल भाषा में समझाया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य लेख भी आम जनता और खासतौर से ग्रामीण लोगों के लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक साबित हो रहा है। इन सब जानकारियों के लिए एक बार फिर से संपादक मंडल को धन्यवाद कहना चाहती हूँ और साथ ही साथ ये आशा करती हूँ कि इस 'कहार' पत्रिका द्वारा और जानकारियां हमें मिलती रहेगीं।

विद्यालक्ष्मी
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
किशनगढ़, राजस्थान

संपादक महोदय जी,

आपका 'कहार' पत्रिका हमें प्राप्त हुआ। इस पत्रिका में प्रकाशित विभिन्न भाषाओं में जैसे हिन्दी, भोजपुरी, हरियाणवी कविताएँ एवं आयुर्वेदिक दोहे बहुत ही और मार्गदर्शक लगे। इसको हरियाणवी रागिनी में "सेप्न का राज' एवं 'सेहत दिवस' बहुत ही मार्गदर्शक हमें लगा। मैं आशा करता हूं कि इस तरह की कविताएं एवं दोहे हमें 'कहार' पत्रिका द्वारा लगातार मिलते रहेगे। अंत में मैं सभी संपादक मंडल का धन्यवाद कहना चाहता हूँ।

शैलेष त्रिपाठी
बांसी, उत्तर प्रदेश

Dear Editor,

The magazine Kahaar is always trying to put a platform at which the authors from all the sectors may share their views and knowledge. As customary, the last issue of the magazine has covered many relevant and informative articles from different fields. The magazine started with an excellent editorial. The biography "Water Man of India; Jalpurus Rajendra Singh" is very interesting and covered all the relevant information regarding life and contribution of Rajendra Singh. The article "Anaemia and Iodine Deficiency Disorders (IDD) in pregnant Women: an Overview" is very attractive and revealing especially for the women. The causes, basic symptoms and precautions by which we can be safe our life from anaemia have been discussed in this article. In the next article entitled "Diet requirement for women with anaemia and thyroid malfunctioning", the author discussed about the nutrients requirement during anaemia and thyroid.

Mukesh Kumar Jaiswal
Centre for Far East Language, Korean
Central Universtity of Jharkhand
Ranchi-India, 835205

Scientific Methods are more suitable to discover knowledge, however, art and literature have better tools and techniques to communicate it among various sections of the society. To enjoy knowledge and to decide its application, a dedicated self consciousness is required.

Rana Pratap Singh

प्रयोग

विवेकानन्द विद्यालय मुसहर टोली, जंगल बेलवा, पडरौना–कुशीनगर एक अभिनव प्रयोग : (मूस से माउस तक)

❐ डॉ. सी.बी. सिंह सेंगर
सचिव, विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना (कुशीनगर)

गरीब बच्चों की शिक्षा को समर्पित एक ग्रामीण स्कूल समर्पित शिक्षकों एवं जनूनी प्रबन्धन के साथ चल तो रहा है, परंतु इसे आर्थिक एवं अकादमिक सहयोग की ज़रूरत है। कुछ संस्थाएँ मिलकर कोशिश कर रही हैं, कि इस एक स्कूल के आर्थिक स्वावलम्बन होने के बाद ऐसे स्कूलों की श्रृंखला बनाई जाय। प्रस्तुत है, स्कूल की कोशिशों की एक रिपोर्ट।

सम्पादक

स्वामी विकवेकानन्द जी के अमर संदेश 'नर सेवा नारायण सेवा' – (मानव सेवा–माधव सेवा) से प्रेरित होकर, सन् 1985 में जन–सेवार्थ विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना की स्थापना की गयी। विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र सामाजिक सेवा कार्य के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग हैं। क्या समाजिक उत्तरदायित्व का बोध रखने वाले व्यक्ति किसी कल्याणकारी कार्यक्रम को चला सकते हैं? यही प्रयोग विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र पडरौना 1985 से कर रहा है।

इस केन्द्र ने 1992 में विभिन्न सामाजिक कार्यों को करते हुए, सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य समाज के सबसे उपेक्षित, वंचित एवं कमजोर वर्ग (विशेषकर मुसहर समुदाय) के छात्र–छात्राओं को शिक्षित करने के लिए एक विद्यालय की स्थापना का संकल्प लिया। यह विद्यालय पडरौना नगर से प्रायः 3 कि.मी. उत्तर ग्राम सभा जंगल बेलवा के 'मुसहर टोली' में 61 परिवारों का यह टोला स्वतन्त्रता के 4–5 वर्षों बाद भी जहाँ का तहाँ था। आश्चर्य तब हुआ कि सर्वेक्षण के बाद पता चला कि इस टोले का सबसे अधिक पढ़ा लिखा व्यक्ति कक्षा 4 पास है। टोले का शायद ही कोई बच्चा स्कूल पढ़ने जाता हो। केन्द्र के स्वयं सेवकों ने 14 नवम्बर 1992 को बाल–दिवस के अवसर पर गाँव के 80 बच्चों को लेकर पठन–पाठन का कार्य प्रारम्भ किया। स्वामी विवेकानन्द जी ने जिस दरिद्र नारायण की कल्पना की थी, उसका मूर्त रूप देखने के लिए कहीं दूर नहीं, इस टोले की यात्रा करना पर्याप्त होगा।

विद्यालय स्थापना का संकल्प अब आकार ग्रहण कर लिया है। केन्द्र के हितैषी, उदारमना नागरिकों, कर्मठ और निष्ठावान शिक्षकों, संवेदनशील अधिकारियों, सहृदय जन प्रतिनिधियों और केन्द्र के निष्ठावान कार्य कर्त्ताओं के समवेत सहयोग से विद्यालय प्रगति के पथ पर अग्रसर है। केन्द्र द्वारा सेवा और शिक्षा के क्षेत्र में संचालित यह प्रकल्प दीन जनों की सेवा का एक अन्यतम उदाहरण है।

आज विद्यालय के पास जन सहयोग से अपनी जमीन, भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय आदि है। यहाँ कक्षा एक से आठ तक की पढ़ाई होती है। कुल 250 छात्र–छात्राएं अध्ययनरत हैं। इनमें से लगभग 100 छात्र निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करते हैं। शेष बच्चों से भी मात्र 20 से 30 रु. प्रति माह शुल्क लिया जाता है। साथ ही बच्चों को पुस्तक, कापी, कलम कपड़े आदि समय–समय पर निःशुल्क दिया जाता है। ये छात्र अत्यन्त निर्धन परिवारों से आते हैं। केन्द्र की आय का कोई स्रोत नहीं है। हमारे पीछे कोई पूँजी प्रतिष्ठान भी नहीं है। सेवा के सारे प्रकल्प उदार मन लोगों के आर्थिक सहयोग से संचालित किये जाते हैं। केन्द्र कोई सरकारी अनुदान भी प्राप्त नहीं करता है। इस प्रकार विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र एक चेरेटेबुल संस्था है। विवेकानन्द विद्यालय धीरे–धीरे विकास की ओर अग्रसर है। लोग अब कहने लगे हैं कि जो मुसहर कुछ दिन पहले मूस खाकर अपना जीवन यापन करते थे, आज उनके बच्चे शानदार ढंग पढ़ाई के माध्यम से माउस चला रहे हैं। पठन–पाठन के कारण ही उनकी स्वाभिमान शून्यता, दरिद्रता एवं जड़ता की स्थिति में बदलाव आया है और उनमें आत्म गौरव का बोध हुआ है। यही आत्म गौरव राष्ट्र की अमूल्य सम्पदा है।

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र आरम्भ से जन सहयोग से अपने सीमित संसाधनों द्वारा यथासम्भव कार्य कर रहा है। इसे अभी बहुत कुछ करना है। इसका सारा भार जन सेवा में रूचि रखने वाले उदारमना लोग अपने कंधो पर उठाते रहे हैं। आगे के काम के लिए भी अभी बहुत से परोपकारी सबल कंधों के सहारे की अपेक्षा है। ❖

हमारा संकल्प

[illegible]

ISSN : 2394-3912

एक नजर इधर भी.....

विवेकानन्द विद्यालय मुसहर टोली, जंगल बेलवा, पडरौना–कुशीनगर आर्थिक संकट से गुजर रहा है। इसे सहयोग की जरूरत हैं।
हमारी योजना इसकी आर्थिक जरूरतें पूरी होने के बाद इसी तरह के अन्य विद्यालयों की शृंखला बनाने की है।
आपसे सहयोग की गुजारिश है।
सहयोग कैसे करें?

1. *आर्थिक सहयोग :*
   - *(अ) एक मुश्त दान द्वारा*
   - *(ब) गरीब बच्चों की शिक्षा को वार्षिक रूप से या कई वर्षों के लिए गोंद लेकर।*
     (एक बच्चें की प्राथमिक शिक्षा मात्र रुपये ढाई हजार के आर्थिक वार्षिक सहयोग से गोद ले सकते हैं।)
   - *(स) मेधावी बच्चों को अपने प्रियजनों एवं परिजनों की स्मृति में गोद लेकर।*
   - *(द) बच्चों की पठन–पाठन सामग्री में आंशिक या पूर्ण सहयोग करके।*
2. *अन्य सहयोग :*
   - *(अ) बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं खेलकूद के आयोंजनों में शामिल होकर तथा सहयोग देकर।*
   - *(ब) संस्था का अवलोकन तथा सुझाव देकर।*

आर्थिक सहयोग के लिए 'विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना, कुशीनगर के नाम चेक या सीधे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। जिसका विवरण निम्नवत् है।

'विवेकानंद युवा कल्याण केन्द्र', पडरौना के नाम खाता
बैंक–पंजाब नेशनल बैंक–मुख्य शाखा,
दुर्गा मन्दिर मार्ग, पडरौना
खाता संख्या : 0374000100108213
आईएफएससी कोड : PUNB 0037400
केन्द्र का पंजीकरण सं. : जी–2913
नवीनीकरण सं. : 1931/2011–2012
ईमेल– vykkpadrauna@gmail.com

स्कूल के गतिविधियों की एक झलक

Gratefully reprinting

A New Era of Opportunity

❒ Ban Ki-Moon

Mr. Ban-Ki- Moon is the Secretary General of the United Nations. Climate Change is a harse reality and Nations are negotiating to adopt and mitigate it as per their interest. The countries like India can adopt it more easily by the participation of its people. We are his article published in Times of India, Lucknow, 19 Dec, 2015 to understand the recent developments on climate issue more authentically.

Editor

Seventy years ago, the United Nations was created from the ashes of World War II. Seven decades later, in Paris, nations have united in the face of another threat - the threat to life as we know it due to a rapidly warming planet.

Governments have ushered in a new era of global cooperation on climate change - one of the most complex issues ever to confront humanity. In doing so, they hae significantly advanced efforts to uphold our Charter mandate to "save succeeding generations".

The Paris Agreement is a triumph for people, the environment, and for multilateralism. It is a health insurance policy for the planet. For the first time, every country in the world has pledged to curb their emissions, strengthen resilience and act internationally and domestically to address climate change.

Together, countries have agreed that, in minimizing risks of climate change, the national interest is best served by pursuing the common good. I believe it is an example we could gainfully follow across the political agenda.

The victory in Paris caps a remarkable year. From the Sendai Framework for Disaster Risk Reduction to the Addis Ababa Acton Agenda on Financing for Development, from the historic Sustainable Development Summit in New York to the climate conference in Paris, this has been a year in which the United Nations has proven its ability to deliver hope and healing to the world.

Since my first days in office, I have called climate change the defining challenge of our time. That is why I have made it a top priority of my tenure. I have spoken with nearly every world leader about the threat climate change poses to our economies, our security and our very survival. I have visited every continent and met communities living on the climate front-lines.

I have been moved by suffering and inspired by the solutions that will make our world safer and more prosperous.

I have participated in every United Nations climate conference. The three Climate Summits I convened mobilized political will and catalyzed innovative action by governments, business and civil society. The Paris Action Agenda, along with the commitments made at last year's Climate Summit, show that the answers are there.

What was once unthinkable is now unstoppable. The private sector is already investing increasingly in a low-emissions future. The solutions are increasingly affordable and available, and many more are poised to come, especially after the success of Paris.

The Paris Agreement delivered on all the key points I called for. Markets now have the clear signal they need to scale up investments that will generate low-emissions, climate-resilient development.

All countries have agreed to work to limit global temperature rise to well below 2°C and, given the grave risks, to strive for 1.5°C. This is especially important for the nations of Africa, Small Island Developing States and Least Developed Countries.

In Paris, countries agreed on a long-term goal to cap global greenhouse gas emissions as soon as possible in the second half of the century. One hundred and eighty-eight countries have now submitted their Intended Nationally Determined Contributions, which show what they are prepared to do to reduce emission and build climate resilience.

Currently, these national targets have already significantly bent the emissions curve downwards. But, collectively, they still leave us with an unacceptably dangerous 3°C temperature rise. That is why countries in Paris pledged that they will review their national climate plans every five years, beginning in 2018. This will allow them to increase ambition in line with what science demands.

The Paris Agreement also ensures sufficient, balanced adaptation and mitigation support for developing countries, especially the poorest and most vulnerable. And it will help to scale up global efforts to address and minimize loss and damage from climate change.

Governments have agreed to binding, robust, transparent rules of the road to ensure that all countries do what they have said they would do. Developed countries have agreed

ISSN : 2394-3912

to lead in mobilizing finance and to scale up technology support and capacity building. And developing countries have assumed increasing responsibility to address climate change in line with their capabilities.

In acknowledging this historic achievement, I would be remiss if I did not recognize the leadership and vision of the business community and civil society. They have highlighted both the stakes and the solutions. I salute them for their out-standing display of climate citizenship.

Now, with the Paris Agreement in place, our thoughts must immediately turn to implementation. By addressing climate change we are advancing the 2030 Agenda for Sustainable Development. The Paris Agreement has positive implications for all the Sustainable Development Goals. We are poised to enter a new era of opportunity.

As governments, business and civil society begin the mammoth project of tackling climate change and realizing the Sustainable Development Goals, the United Nations will assist Member States and society at large at every stage. As a first step in implementing the Paris Agreement, I will convene as requested by the Agreement and by the Convention, a high-level signing ceremony in New York, on 22 April next year.

I will invite world leaders to come to help keep and increase momentum. By working together, we can achieve our shared objective to end poverty, strengthen peace, and ensure a life of dignity and opportunity for all. ❖

Invitation

(Registered)

Prithvipur Abhyudaya Samiti

Regd. Office : H.No.247, Sector-2, Udyan-2, Eldeco, Lucknow-226025 (U.P.), India
Field Office : Village-Prithvipur, Post Office: Vishunpura (Dudahi), District: Kushinagar-274302, U.P., India
Email : cceseditor@gmail.com, Web : www.prithvipur.org

PRITHVIPUR ABHYUDAY SAMITI

Membership Form

Please post to

The Secretary,
Prithvipur Abhyudaya Samiti, H.No.-247, Sector-2, Udyan-2, Eldeco, Lucknow-226025 (U.P),

Dear Sir/Madam,

I am willing to get enrolled as Member of **"Prithvipur Abhyudaya Samiti"**. I agree to abide by the Memorandum and Rules and Regulations of the Society as framed from time to time.

1. Name of the Applicant : .....
2. Educational Qualification : .....
3. Address, Mobile Number, E-mail : .....
6. Category of Membership : Annual (Individual/Institutional/Industry)/Life (Individual/Institutional/Industry)

Date : ..... Place : ..... Signature : .....

Details of Fee: **(A) Life Membership** : Individual : ₹ 5000/-; Institutional : ₹ 50,000/- (For ten years only) Industry : ₹ 1,00,000/- (For ten years only)

(B) Annual membership: Individual : ₹ 500/- per annum; Institutional : ₹ 5,000/-, Industry : ₹ 10,000-

विमर्श

जलवायु न्याय की डगर पर

❐ एन. के. सिंह

श्री एन. के. सिंह, पूर्व सांसद और पूर्व केन्द्रीय सचिव हैं और ख्यातिप्राप्त विचारक एवं लेखक हैं। हम 'हिन्दुस्तान' में उनके पूर्व प्रकाशित लेख को अपने पाठकों के लिए साभार प्रकाशित कर रहे हैं। धीरे-धीरे दुनियां आम सहमति से जलवायु परिवर्तन के संकट को पहचानने लगी है और उससे निपटने की गम्भीरता से तैयारी कर रही है। श्री सिंह का यह लेख इस विमर्श को महत्वपूर्ण बिन्दुओं सहित आगे बढ़ाता है।

सम्पादक

रॉबर्ट स्वान की इस पंक्ति को याद करना जरूरी है – यह सोच हमारी पृथ्वी के लिए सबसे बड़ा खतरा है, कि कोई दूसरा इसे बचा लेगा। कई वैज्ञानिक रिपोर्ट यह इशारा करती हैं कि ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के मौजूदा खतरे की वजह मानवीय गतिविधियां हैं, इसलिए इससे निपटने की जवाबदेही भी मनुष्यों की ही होनी चाहिए। बान की मून के शब्दों में – जलवायु परिवर्तन किसी सीमा से बंधा नहीं है; यह नहीं देखता कि कौन अमीर है और कौन गरीब, या कौन बड़ा है और कौन छोटा। इसलिए इसे हम वैश्विक चुनौती कहते हैं, जिससे निपटने के लिए सभी देशों के एक साथ आने की जरूरत है। ऐसे ही तर्क दुनिया के 195 देशों को पेरिस में एक साथ ले आए।

पेरिस में जिस समझौते पर सहमति बनी है, वह जलवायु परिवर्तन को मानव समाजों और इस ग्रह के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण और अचल खतरा मानता है। इस खतरे की मार कम करने के लिए जरूरी यह है कि वैश्विक तापमान का स्तर औद्योगिक क्रांति युग के पहले के दौर से भी दो डिग्री सेल्सियस कम रखना, फिर आगे इसे 1.5 डिग्री सेल्सियस तक कम करना। 1970 से 2004 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में खतरनाक 70 फीसदी की वृद्धि हुई है, जबकि 1880–2012 के दौरान वैश्विक तापमान 0.85 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। इस वजह से दुनिया भर में मौसम से संबंधित कई तरह के बदलाव हुए हैं, जिससे पारिस्थितिकीय तंत्र पर खतरा बढ़ रहा है। ग्लेशियरों का पिघलना, समुद्री जल–स्तर में वृद्धि, गर्मियों की तेज तपिश, पौधों और जानवरों की विविधताओं में बदलाव, समय से पूर्व पौधों में फूल आना जैसे मौसम के कई प्रभाव हमारे सामने आ रहे हैं। पेरिस समझौते में सभी देशों ने तय किया है कि ग्रीनहाउस गैसों के सर्वाधिक उत्सर्जन का लक्ष्य जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी पा लिया जाए और फिर इसमें तेज कमी की जाए।

जलवायु परिवर्तन बहु–आयामी मुद्दा है। विज्ञान व तकनीक, सामाजिक, आर्थिक व व्यापार, राजनीति व कूटनीति इसके महत्वपूर्ण पहलू हैं। इन सबका आपस में गुंथा होना जलवायु परिवर्तन को लेकर चिंतित देशों के लिए सर्वमान्य समाधान की राह जटिल बनाता है। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए पहला गंभीर प्रयास यूएनएफसीसीसी यानी द यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज माना जाता है, जिस पर 1992 के रिओ पृथ्वी सम्मेलन में 150 से अधिक देशों ने हस्ताक्षर किए। 1997 में यूएनएफसीसीसी के देशों ने कार्बन उत्सर्जन कम करने को लेकर तैयार क्योटो प्रोटोकोल को भी मंजूर किया। बाद में कोपेनहेगन समझौते 2009 में औद्योगिक रूप से विकसित देशों ने विकासशील देशों की जरूरतो को देखते हुए वर्ष 2020 तक 100 अरब डॉलर संयुक्त रूप से जुटाने का वादा किया। हालांकि इस वादे को लेकर देशों में मतभेद रहे हैं।

वैज्ञानिकों की मानें तो यदि वर्तमान दर से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता रहा, तो धरती का औसत तापमान पांच डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। 1970 के दशक में ही येल यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर विलियम नॉरदौस ने अपने शोध पत्र में यह चेतावनी दी थी, कि वैश्विक तापमान मौजूदा औसत तापमान से दो या तीन डिग्री सेल्सियस ज्यादा बढ़ रहा है। बाद में आईपीसीसी ने भी अपनी रिपोर्ट में दो डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि का लक्ष्य तय करने पर जोर दिया। लिहाजा, अन्य समझौतों की तरह पेरिस में भी दो डिग्री का लक्ष्य तय किया गया है।

जलवायु वार्ता में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा विकसित देश बनाम विकासशील देशों द्वारा की जाने वाली ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन है। भारत और चीन जैसे विकासशील देशों पर ठीकरा फोड़ते हुए पश्चिमी देश कार्बन उत्सर्जन में कमी करने की वकालत करते हैं, जो देश के सकल घरेलू उत्पादक यानी जीडीपी पर आधारित होना चाहिए। लेकिन इसमें इस तथ्य की अवहेलना कर दी जाती है, कि उत्सर्जन का मौजूदा स्तर पश्चिम के नव–विकसित देशों द्वारा किए गए बेतहाशा औद्योगिक विकास का परिणाम है। वर्ष 1850 से उत्सर्जन संबंधी आंकड़े खुलासा करते हैं

पूर्व सांसद और पूर्व केंद्रीय सचिव

ISSN : 2394-3912

कि उत्सर्जन में कमोबेश एक तिहाई हिस्सेदारी अमेरिका की है, जबकि यूरोप और अन्य विकसित देश 45 फीसदी जवाबदेह रहे हैं। इसी आधार पर विकासशील देश कार्बन उत्सर्जन की गण्ना जनसंख्या के आधार पर करने की बात कहते हैं। सुखद है कि पेरिस में इसका ख्याल रखा गया।

टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस का अनुमान है, कि आज भी भारत महज तीन प्रतिशत ही उत्सर्जन करता है। इसी तरह, साल भर में औसतन एक भारतीय 1.6 टन कार्बनडाई–ऑक्साइड छोड़ता है, जबकि एक अमेरिकी 16.4 टन, जापानी 10. 4 टन और यूरोपीय 7.4 टन सालाना उत्सर्जन के जिम्मेदार हैं। विश्व का औसतन प्रति व्यक्ति उत्सर्जन सालाना 4.9 टन है। इन सबके बावजूद एक जिम्मेदार राष्ट्र के तौर पर भारत ने ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए कई स्वैच्छिक और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं में अपनी सहमति दी हैं। राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास के तहत भारत ने 30 जून, 2008 को जलवायु परिवर्तन पर नेशनल ऐक्शन प्लान तैयार किया, जिसके तहत राष्ट्रीय सौर मिशन, राष्ट्रीय संवर्धित ऊर्जा दक्षता मिशन, राष्ट्रीय स्थाई आवास मिशन, राष्ट्रीय संवर्धित ऊर्जा दक्षता मिशन, राष्ट्रीय स्थाई आवास मिशन, राष्ट्रीय जल मिशन जैसे आठ अभियानों पर खासा जोर दिया जा रहा है। इसके साथ ही कार्बन उत्सर्जन को अवशोषित करने के लिए भारत ने वर्ष 2030 तक अधिकाधिक धन लगाने का भी वादा किया है। इतना ही नहीं, मौजूद पंचवर्षीय योजना (2012–17) में भी कोपेनहेगन समझौते के संदर्भ में उत्सर्जन कम करने और अक्षय ऊर्जा की क्षमता 3.00.000 मेगावाट बढ़ाने का लक्ष्य तय किया गया है। हाल ही में पेरिस में पेश राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित लक्ष्य आईएनडीसी (इंटेंडेड नेशनली डिटरमाइंड कंट्रीब्यूशन्स) में भी भारत ने कई अन्य लक्ष्यों के साथ कार्बन उत्सर्जन गहनता को वर्ष 2030 तक 2005 के स्तर की तुलना में सकल घरेलू उत्पाद के मुकाबले 33–35 प्रतिशत तक घटाने की बात कही है।

बहरहाल, भारत अपने वादों की तरफ गंभीरता से कदम बढ़ा रहा है। यह दिखता भी है। इसलिए क्लाइमेट ऐक्शन ट्रेकर ने भी भारत के प्रस्ताव को अमेरिका की तुलना में काफी बेहतर और यूरोपीय संघ व चीन से थोड़ा कमतर बताया है। पेरिस समझौते में वर्ष 2023 से हर पांच साल में प्रगति की समीक्षा करने और साथ ही, समानता सुनिश्चित करने के लिए विकसित देशों को 2020 तक विकासशील देशों को सालाना 100 अरब डॉलर की मदद करने को बाध्य किया गया है। हालांकि देखने वाली बात यह होगी कि विकसित हो रहे देशों में यह रकम या ऊर्जा प्रौद्योगिकी किस तरह पहुंचती है। बेशक पेरिस समझौते में कुछ कमियां हैं, मगर इसमें क्लाइमेट जस्टिस यानी पर्यावरण न्याय की बात कही गई है, जो सुखद है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सही कहा है कि पेरिस समझौते में न कोई विजेता है, और न किसी की हार हुई। पर्यावरण को लेकर न्याय की जीत हुई है और हम सब एक हरित भविष्य पर काम कर रहे हैं। ❖

कविता

अक्सर

राणा प्रताप सिंह

अक्सर एक दौर बस अच्छा सा गुजर जाता है,
अक्सर कुछ याद करके दिल सा भर जाता है,
अक्सर एक बात मन में टीस भी उभर आती,
अक्सर एक बिगड़ी हुई जुल्फ़ सँवर जाती है।

अक्सर एक खोई सी तस्वीर निकल आती है,
अक्सर प्रश्नों की झड़ी खुद से ही टकराती है,
अक्सर एक साँस कहीं बीच में अटक जाती,
अक्सर एक सपना बस खाक में मिल जाता है।

अक्सर एक ऊर्जा पुंज देह में फट जाता है,
अक्सर एक जोश मेरे सीने में भर जाता है,
अक्सर एक राह अंधेरे से निकल आती है,
अक्सर एक चिड़िया आवाज दे बुलाती है।

अक्सर एक औरत बहुत जोर से चिल्लाती है,
अक्सर एक बच्चे की यूँ आँख उलट जाती है,
अक्सर एक बीमार की खाँसी बढ़ जाती है,
अक्सर एक बाढ़ कोई गाँव बहा लाती है।

अक्सर एक नदी मेरे मन मे उफन जाती,
अक्सर एक फूल आधी रात को खिल आता है,
अक्सर एक सूरज बदलों में भटक जाता है,
अक्सर एक पेड़ अपनी साख फड़फड़ाता है।

अक्सर एक तारे में सूरज की झलक आती है,
अक्सर एक नदी अपने दर्द से चिल्लाती है
अक्सर एक आग आसमान में उड़ जाती है
अक्सर एक घुंध सी सपनों पर पलट जाती है।

समीक्षा

जलवायु संकट

□ डी. रघुनन्दन

पर्यावरणविद श्री डी. रघुनन्दन दिल्ली साइंस फोरम के सचिव एवं अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क के कोषाध्यक्ष हैं। वे विज्ञान के मुद्दों पर लगातार लिखते हैं। श्री रघुनन्दन ने इस लेख में जलवायु संकट को जनपक्षीय नजर से लिखा है। हम पेरिस कन्वेंशन में जलवायु परिवर्तन के दिसम्बर, 15 में हुए सम्मिट के परिप्रेक्ष्य में यह लेख पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

सम्पादक

'वैश्विक–गर्मी, यह शब्द बिल्कुल नई भुनभुनाहट है। जो ठंड में रज़ाई ओढ़कर गर्म होने जैसा कुछ–कुछ आभास देती है। पर मानव जाति आज जिस चुनौती का सामना कर रही है, ये उसकी भयानकता का वर्णन कर पाने में नाकाफी है। 'जलवायु–परिवर्तन' की जगह 'जलवायु–संकट' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन पर अंतर्शासकीय पेनल (आई.पी.सी.सी.) जो कि संयुक्त राष्ट्र का ही एक अंग है, जिसमें तमाम देशों को वैज्ञानिक जमात के 3000 से भी अधिक वैज्ञानिक शामिल है और जिसे 120 से अधिक देशों का समर्थन हासिल है, उसने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि जलवायु परिवर्तन एक न बदला जा सकने वाला नंगा सच है। हिमयुग के बाद पहली बार मानव जाति के सामने अस्तित्व का संकट आ खड़ा हुआ है।

जलवायु–परिवर्तन की निश्चितता

यह समस्या वातावरण में उन गैसों के बढ़ने से हुई है, जिन्हें ग्रीन हाउस गैसें कहा जाता है। मुख्यतः कार्बन डाईऑक्साइड और मिथेन, पर थोड़ी मात्रा में कुछ अन्य गैसें भी। ये गैसें ऊर्जा–केन्द्रों, वाहनों, कल–कारखानों, खेती आदि से उत्सर्जित होती है। पेड़–पौधों और समुद्र आदि के द्वारा ऐसी गैसों को सोख लेने की क्षमता से कही अधिक मात्रा में ये गैसे वातावरण में घुल चुकी है। धरती के ऊपर इनकी एक चादर सी तन गई है, जिससे वातावरण की गर्मी बाहर नहीं जा पा रही है।

औद्योगिक युग से पहले वातावरण में लगभग 300 पीपीएमवी (पार्ट्स पर मिलियन बाय वोल्यूम) कार्बन डाईऑक्साइड गैस मौजूद थी। विज्ञान बता रहा है, कि ये स्तर अब लगभग 400 पीपीएमवी तक पहुंच गया है। इससे औसत तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हो गई है। यदि ये हमें भयानक नहीं जान पड़ता हो तो इस अनुमान को देखिए कि यदि इसी मात्रा में ये गैसे वातावरण में घुलती रहे तो वर्ष 2030 तक वातावरण में ग्रीन हाउस गैसेस का स्तर 450 पीपीएम हो जायेगा। जिससे दुनिया का तापमान 2.5 डिग्री. सेल्सियस बढ़ जायेगा। समुद्री सतह ऊपर उठ जाएगी। इतनी कि मालदीव जैसे कई टापू–देश पूर्णतः डूब जाएंगे। अनेक सीमांत इलाके बाढ़–ग्रस्त हो जाएंगे। जिनमें बाग्लादेश का बहुत सा हिस्सा और बम्बई, शंघाई जैसे कई महत्वपूर्ण महानगर भी होंगे। इस कारण फसलों की पैदावार में भी भारी बदलाव आएगा। मसलन भारत में गेहूँ और चावल की पैदावार में 40 प्रतिशत नुकसान होगा। साथ ही सूखा, बाढ़ या मौसम में अति बदलाव की घटनाएं लगातार और बार–बार होंगी। सदी के अंत तक ग्रीन हाउस गैसों का स्तर 550–600 पीपीएमवी और तापमान 4–5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाने की आशंका है। इससे पृथ्वी पर जीवन पर संकट मंडरा रहा है।

यह निकृष्टतम परिदृश्य है। यदि इसे रोकना है तो इस वैश्विक–संकट से निपटने के लिए वैश्विक स्तर पर तत्काल कार्रवाई की जरूरत है। आईपीसीसी की रिपोर्ट का अनुमान है कि इसके लिए पूरी दुनिया ग्रीन–हाउस गैस स्तर को 450 पीपीएमवी के आसपास स्थिर रखना होगा। जो कि वर्तमान स्तर के आसपास ही है। अच्छी बात यह है कि ऐसा उपलब्ध प्रौद्योगिकी के द्वारा भी किया जा सकता है, जिसकी लागत भी उस कथित लागत से कहीं कम होगी, जो डरा देने वाले लोग बता रहे हैं।

यह कैसे किया जाए? समस्या की जिम्मेदारी कौन लेगा? इसलिए ज्यादा भार किसे उठाना चाहिए? इस संकट से निपटने के लिए क्या कदम उठाए गए है या प्रस्तावित है?

अंतर्राष्ट्रीय जलवायु संधि

यह एक स्थापित तथ्य है कि इस संकट की प्राथमिक जिम्मेदारी तो पश्चिम के औद्योगिक देशों पर है। जिन्होंने वातावरण में अभी जमा ग्रीनहाउस गैसों का 80 प्रतिशत हिस्सा अपनी ऊर्जा पोषित जीवन पद्धति के कारण उगला है। भारत द्वारा उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैसों की तुलना में अमेरिका दस गुना अधिक गैस वातावरण में उगलता है। प्रति व्यक्ति स्तर पर नापा जाए तो ये

ISSN : 2394-3912

अनुपात और भी भयानक होगा। औसत भारतीय की अपेक्षा औसत अमेरिकी 20 गुना अधिक ऊर्जा का उपभोग करता है। जिससे कि वातावरण में कहीं अधिक ग्रीनहाउस गैसें घुलती है।

इसी कारण तथाकथित क्योटो प्रोटोकाल, जो 2004 से प्रभाव में आयी अंतर्राष्ट्रीय संधी है, यह जरूरी किया है कि प्रमुख औद्योगिक देशों को 2012 तक उनके उत्सर्जन को 1990 के स्तर से 5 प्रतिशत तक नीचे लाना चाहिए। हालांकि अपने परिचित अंदाज में, खासतौर पर बुश प्रशासन के तहत जो कि तमाम बहुपक्षीय संस्थानों और व्यवस्थाओं से नफरत करते थे, दुनिया के सबसे बड़े गैस उत्सर्जक अमेरिका ने संधी में शामिल होने से इंकार कर दिया और इसे लगभग शुरूआत में ही छोड़ दिया। अधिकांश औद्योगिक देश अपने–अपने लक्ष्यों को हासिल करने में नाकामयाब रहे। अमेरिका ने हेकड़ी के अंदाज में कहा कि वो 'अमेरिकन जीवन शैली' को प्रभावित करने वाले उपायों, मसलन ऊर्जा खपत कम करना आदि को लागू नहीं करेगा। साथ ही नव संकीर्ण पंथी विचारकों तथा तेल और ऊर्जा निगमों की शह पर उद्योगों द्वारा जनति जलवायु परिवर्तन के यथार्थ को स्वीकार करने तक से मना कर दिया।

लालच और अमेरिकी वर्चस्व वाले वैश्विक पूंजीवाद को बनाए रखने की इच्छा वाले औद्योगिक देशों को अनेक छूटे देकर क्योटो संधी में कई गंभीर समझौते भी किए गए। औद्योगिक देशों को उनके अपने देश में उत्सर्जन कम करने की शर्त में विकासशील देशों में उनके द्वारा ग्रीनहाउस गैसों को सोखने वाली परियोजनाएं स्थापित करने के आधार पर ढ़ील दे दी गई। जैसे कि वन लगाना आदि। जो कि न सिर्फ सस्ता सौदा है, बल्कि औद्योगिक देशों को अपने देश के भीतर कड़े कदम नहीं उठाने पड़ते। इस वज़ह से उनकी जनता की नाराजगी से भी वे बच जाते हैं। नव उदार नीतियां अपनाने के कारण क्योटो संधि 'कार्बन–व्यापार' का भी प्रावधान करती है। अर्थात कंपनियां 'उत्सर्जन की कमी' को खरीद–बेच सकती हैं। इस तरह इस वैश्विक संकट से निपटने के लिए बाज़ार–तंत्र के 'मंत्र' को अपनाया जा रहा है। तो क्या आश्चर्य कि क्योटो संधि का अंतिम परिणाम है – इतनी 'गरम–हवा'!

क्योटो वार्ता में गर्मागर्म बहस का एक बड़ा कारण वो निर्णय है, जो बड़े विकासशील देशों चीन और भारत को उत्सर्जन घटाने के लक्ष्य में इस आधार पर छूट देता है कि ऐसे गरीब देश, जिन्होंने इस समस्या को पैदा करने में ऐतिहासिक तौर पर अधिक योगदान नहीं दिया है, उनसे उनके आर्थिक उन्नति के इस दौर में पीछे हटने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी बात को अमेरीका ने संधी से खुद को बाहर रखने का बहाना भी बनाया है।

संपूर्ण संधि और उसके तमाम प्रावधान 2012 के बाद कार्रवाई के लिए परखे जाएंगे। इसकी शुरूआत दिसम्बर 2007 में इंडोनेशिया के बाली शहर में संपन्न एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन से हो चुकी है। आईपीसीसी की नवीनतम रिपोर्ट के आधार पर हर कोई इस बात से सहमत है, कि तत्काल कड़ी कार्रवाई शुरू कर दी जाना चाहिए। पर विडम्बना यह है कि अनेक पुराने विवादास्पद मुद्दे अब भी कायम है।

उत्सर्जन घटाना

एक बात जिस पर हर कोई सहमत है, यह है कि उत्सर्जन को घटाने को प्राथमिकता दी जाना चाहिए। चाहे अनुकूलन की रणनीतियां कितनी भी महत्वपूर्ण हो (समुदायों को जलवायु–परिवर्तन के परिणामों के साथ संगति बिठाने में मद्द के लिए कदम उठाना, जैसे कि फसलों में बदलाव करना आदि)। यहां बचाव ही बेहतर है, क्योंकि इस मामले में कोई इलाज है ही नहीं।

इसलिए, आईपीसीसी रिपोर्ट उत्सर्जन के मुख्य स्रोतों की निशानदेही करते हुए उन्हें कम करने की बात करती है।

विद्युत उत्पादन सबसे बड़ी उत्सर्जक प्रक्रिया है। इस मामले में परिष्कृत प्रौद्योगिकी और अकार्बनिक या कम प्रदूषणकारी ऊर्जा स्रोतों के उपयोग आदि से काफी सुधार किया जा सकता है। ताप ऊर्जा केन्द्र जैसे कि भारत में है, वहां भी कोयले की सफाई और गैसीकरण आदि की प्रौद्योगिकी मौजूद है तथा क्षमता बढ़ाने और ताप को रिसाईकिल करने आदि से भारी मात्रा में ऊर्जा बचायी जा सकती है। पैसे की बचत यानी पैसे की कमाई इसलिए उपरोक्त उपाय शुरूआती लागत को भरपाई कर सकते हैं। भारत में सौर या पवन ऊर्जा जैसे अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता का जो 5 प्रतिशत का छोटा–सा आंकड़ा है, उसे बढ़ाया जाना होगा। आईपीसीसी का अनुमान है कि वैश्विक स्तर पर यह आंकड़ा फिलहाल 18 प्रतिशत है, जो 2030 तक 30 प्रतिशत तक जा सकता है।

उत्सर्जन का दूसरा बड़ा कारण यातायात है। सार्वजनिक यातायात की अपेक्षा यातायात के लिए व्यक्तिगत साधन का उपयोग इसके लिए जिम्मेदार है। विडम्बना यह है कि यातायात के क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश कमतर होता जा रहा है। कारपोरेट जगत इस क्षेत्र में उपभोक्तावाद और निजी वाहन रखने की प्रवृत्ति को हवा दे रहा है।

मकानों को गरम–ठंडा या रौशन रखने के उपकरणों के प्रयोग से होने वाली ऊर्जा खपत भी एक बड़ा कारण है। रिपोर्ट कहती है, कि इस तरह होने वाले उत्सर्जन में 2030 तक 30 फीसद तक की कमी लाई जा सकती है। अनुभव बताते है कि मकानों की बनावट में आवश्यकतानुसार बदलाव कर उसे गर्म रखने की जरूरत को कम किया जा सकता है (जर्मनी में निष्क्रिय और स्थापत्य से, जिसमें मकान के सामने के हिस्से में कांच लगाकर

सौर ऊर्जा का उपयोग किया जाता है, उससे उत्सर्जन में करीब 10 प्रतिशत तक की कमी लाई गई है)। ऊर्जा बचत के उपकरणों और पुनर्नवीनीकृत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग से उत्सर्जन में खासी कमी लाई जा सकती है। यह खेदजनक है कि मकानों को ठंडा रखने के मामले में कोई ज़्यादा काम अभी तक नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए, भारत में कुछ क्षेत्रों में आय बढ़ने और कुछ कारपोरेट क्षेत्रों में उछाल आने से एयर–कन्डीशनरों के उपयोग में वृद्धि हुई, लेकिन खास प्रयत्न नहीं किये गए। मकान–निर्माण के नियमों में आवश्यक परिवर्तन तक नहीं किये गये।

रिपोर्ट इस बात को रेखांकित करती है कि 2030 में उत्सर्जन प्रतिशत आज के स्तर पर बनाए रखने की गरज से ऊर्जा के आधारभूत ढ़ांचे में निर्णय प्रक्रिया में भारी बदलाव लाने की जरूरत है। बावजूद इस तथ्य के कि तब तक ऊर्जा की मांग में बेतरह वृद्धि हो चुकी होगी। ऐसा अनुमान है, कि अब से 2030 तक नए ऊर्जा केन्द्रों में लगभग 20 लाख करोड़ अमेरिकी डॉलर (840 लाख करोड़ रुपये) निवेश किये जाएंगे। यूं रिपोर्ट यह भी कहती है कि शाश्वत स्रोतों जैसे सूर्य, पवन आदि से ऊर्जा–उत्पादन के वर्तमान आंकड़े 18 प्रतिशत को 30–35 प्रतिशत तक बढ़ जाने का अनुमान है। प्राकृतिक स्रोतों की तुलना में शाश्वत स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा की वर्तमान में अधिक लागत के प्रति नरमी दिखाने के बावजूद यह होगा। दरअसल तेल के मूल्य बढ़ने की संभावना के चलते, शाश्वत स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा अधिक चलन में आने की उम्मीद है। ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को घटाने के मामले में रिपोर्ट परमाणु ऊर्जा को भी एक विकल्प बताती है। पर वो यह भी कहती है कि दुनिया में कुल ऊर्जा उत्पादन में परमाणु ऊर्जा का हिस्सा वर्तमान 16 प्रतिशत से 2030 तक महज 18 प्रतिशत होने के ही आसार हैं।

ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में यातायात का बड़ा हिस्सा है। रिपोर्ट के अनुसार इस क्षेत्र में उत्सर्जन घटाने के अनेक विकल्प है, पर इस क्षेत्र के विकास की वजह से उनका कुल प्रभाव कम हो जाता है। रिपोर्ट यातायात के तरीकों में ढ़ांचागत बदलाव का आग्रह करती है। सड़क की बजाय रेल या अंतर्राज्यीय जल मार्ग, कम यात्री वाहकों की तुलना में अधिक यात्री वाहकों के प्रयोग और शहरों के बेहतर नियोजन से यातायात की मांग में कमी करने आदि। रिपोर्ट आगाह करती है कि वाहन–ईंधन क्षमता को बाजार की शक्तियों के भरोसे छोड़ देना काफी नहीं होगा। इस तरह वो नव–उदारवाद के स्वीकृत सिद्धांत के विरूद्ध जाकर अधिक नियंत्रण की वकालत करती है।

पर्यावरण–सहयोगी माने जा रहे बायो–ईंधन के बढ़ते उपयोग के प्रति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ रही चिंता का भी रिपोर्ट में उल्लेख है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किये गये अध्ययन से भी यह चिंता पुष्ट होती है। एक तरफ तो इसका चलन बढ़ने और कुल ईंधन उपयोग में इसकी खपत 3 से 5–10 प्रतिशत तक बढ़ने के आसार हैं, जो कि इसके मूल्य और प्रौद्योगिकी के विकास पर निर्भर करेगा। पर ये वनभूमि के उपयोग को बदलने, दुर्लभ जमीन और जल–स्रोतों के उपयोग के लिए प्रतिद्वंदिता बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा के प्रति गंभीर चुनौती भी खड़ी करता है।

रिपोर्ट का कहना है कि उत्सर्जन में कमी के निर्धारित लक्ष्य का लगभग 50 प्रतिशत तक तो वनकटाई को रोककर पाया जा सकता है। ये वर्तमान समय में महत्वपूर्ण मुद्दा है, खासतौर पर उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में, जो वनों की कटाई के कारण बढ़ रही ग्रीनहाउस गैसों की वृद्धि में दो–तिहाई का योगदान देता है। इस तथ्य की तरफ ध्यान देना चाहिए कि पूंजीवादी वैश्वीकरण के चलते अमेज़न और दक्षिण–पूर्व एशिया क्षेत्रों में हर बरस उष्णकटिबंधीय जंगलों के बड़े हिस्से का लकड़ी और गौमांस के धंधे के लिए चारगाह बनाने के लिए सफाया कर दिया जाता है या फिर लाभप्रद बायो–ईंधन बाज़ार के लिए मक्का, गन्ना या पॉम तेल के लिए बुवाई की जाती है।

लागत

रिपोर्ट का सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण पहलू इसका यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को तत्काल कम करने की चुनौती को उपयुक्त लागत में हासिल किया जा सकता है। वैश्वीकरण के लाभ लेने वाले प्रमुख औद्योगिक देशों और बड़ी विकासशील अर्थ–व्यवस्थाओं तक ने लम्बे अरसे तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने की पहल का विरोध यह कह कर किया था कि इसमें भारी लागत की दरकार है, जिससे वृद्धि और विकास प्रभावित होंगे।

यथास्थितिवादियों द्वारा भड़काई गई इस चर्चित धारणा कि ऊर्जा नीतियों में भारी फेरबदल की बहुत बड़ी और असहनीय लागत आएगी, के विपरीत रिपोर्ट का अनुमान है कि ऊर्जा के मामले में ऊपर उल्लेखित महत्वपूर्ण बदलावों से महज़ 5–10 फीसद अधिक खर्च लगेगा। यह एक ध्यान देने योग्य तथ्य है।

रिपोर्ट इस बात पर भी जोर देती है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में आवश्यक कमी लाने के मामले में उच्च ऊर्जा क्षमताओं के द्वारा बड़ी हद तक सफलता पाई जा सकती है। रिपोर्ट के अनुसार "ऊर्जा सुरक्षा' धन की बचत करती है, इसलिए यह एक स्वाभाविक लक्ष्य होना चाहिए। 105 देशों ने आईपीसीसी रिपोर्ट पर सहमति व्यक्त की है। जिनमें विकसित और विकासशील दोनों ही तरह के देश शामिल है। इनका अनुमान है कि सन् 2030 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के आंकड़े को 450 पीपीएम के आसपास तक ले आने के लिए यदि कमी लाने के तमाम उपरोक्त उपायों को लागू किया गया, तो आगामी दो दशकों में वैश्विक

ISSN : 2394-3912

सकल घरेलू उत्पाद में महज 3 प्रतिशत की कमी आएगी अर्थात् प्रतिवर्ष एक प्रतिशत का दसवां हिस्सा।

इस बिंदु पर जोरे देने के लिए रिपोर्ट यह भी बताती है कि कम ऊर्जा लागत, बेहतर बाजार क्षमताओं और प्रौद्योगिकी में सुधार के कारण कुछ मॉडल तो वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में बढ़ोत्तरी तक बताते हैं।

क्योटो वार्ता के बाद

भविष्य में जलवायु–परिवर्तन पर होने वाली अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं के लिए उपरोक्त निर्णयों का बहुत महत्व है। खासतौर पर इसलिए भी कि इस रिपोर्ट की सरकारों ने भी पुष्टि की है। इस बात को ध्यान रखा जाना चाहिए, कि वर्तमान संधि में यह दरकार की गई है, कि विकसित औद्योगिक देश 2012 तक 1995 के स्तर से 5 फीसदी नीचे तक उत्सर्जन को ले जाए, जबकि विकासशील देशों के लिए कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया है। 2012 के बाद के चरण में इस व्यवस्था का पुनर्निधारण किए जाने की बात है।

ए आर 4 रिपोर्ट इस बात को स्वीकार करती है, कि क्योटो संधि से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर मामूली–सा असर पड़ा है। इसलिए आईपीसीसी की अनुशंसाओं में शीघ्रता पर जोर दिया गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हवा में कार्बन डाईऑक्साइड घोलने में 26 प्रतिशत का हिस्सेदार संयुक्त राज्य अमेरिका हठपूर्वक क्योटोसंधी से बाहर रहा है। जिससे उसे दुनिया भर में अपयश मिलता है। जिससे यह संधि शुरू में ही प्रभावित हुई है।

क्योटो वार्ता में बड़े विकासशील देशों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने संबंधी कोई लक्ष्य न दिए जाने के निर्णय पर गर्मागर्म बहस हुई। यह निर्णय इस तथ्य के आधार पर लिया गया था, कि विकसित देशों की तुलना में इन देशों का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन बहुत ही कम है। अपने विकास के इस चरण में गरीब देशों से उनकी आर्थिक उन्नति की गति में कमी लाने की उम्मीद भी नहीं की जानी चाहिए। पर अमेरिका ने संधि से बाहर रहने के लिए उक्त निर्णय का ही बहाना बनाया।

हालांकि उभरती हुई बड़ी अर्थव्यवस्थाओं यथा चीन, भारत, ब्राजील, मेक्सिकों आदि के अलावा तेजी से औद्योगिक विकास कर रहे अन्य देशों पर लगातार यह दबाव बढ़ रहा है, कि वे जलवायु परिवर्तन से पृथ्वी को बचाने के लिए चल रहे वैश्विक अभियान में क्योटो द्वारा निर्धारित "सांझा पर भिन्न जवाबदारी" के तहत अपना सार्थक योगदान दे। बेशक इस दबाव का कुछ अंश राजनीतिक होगा किंतु नैतिक जिम्मेदारी पर जरूर जोर दिया जाएगा।

इस तथ्य का अत्यधिक महत्व है, कि ए आर 4 रिपोर्टों को न सिर्फ अमेरिका, साथ ही चीन, भारत, आसियान देशों और विकसित दुनिया की अन्य औद्योगिक शक्तियों ने भी पुष्टि की। बैंकाक की बैठक में पर्यवेक्षकों ने टिप्पणी की है, कि अमेरीका का रूख 'असाधारण तौर पर सहयोगात्मक' और 'रचनात्मक' था। ऐसा संभवतः अमेरिका के भीतर हुए बड़े राजनीतिक बदलावों, मसलन रिपब्लीकनों के हाथों से कांग्रेस की सत्ता डेमोक्रेटिकों के हाथों में जाने और कई दर्जन राज्यों, जिनमें सर्वाधिक उत्सर्जन करने वाला कैलिफोर्निया भी शामिल है, द्वारा क्योटो संधि के अनुसार उत्सर्जन में कमी लाने के लक्ष्य निर्धारित कर लिए है।

फिलहाल चीन उत्सर्जन के मामले में दूसरे स्थान पर है। वह कुल वैश्विक उत्सर्जन में लगभग 10 प्रतिशत का योग दे रहा है। उसकी दिन–रात होती आर्थिक वृद्धि के चलते वो 2030 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में अमेरिका को पछाड़ सकता है। 3 फीसदी हिस्से के साथ भारत चौथे स्थान पर है। अनुमान है कि जल्द ही वो संपूर्ण अफ्रीका महाद्वीप को पीछे छोड़ देगा। बैंकाक रिपोर्ट के अनुसार अब तक क्योटो में निर्धारित लक्ष्यों से अलग रखे गए विकासशील देशों का अब वैश्विक उत्सर्जन में 54 फीसदी का योगदान है। बेशक प्रति व्यक्ति आधार पर यह अब भी विकसित आर्थिक शक्तियों की तुलना में दसवें हिस्से से भी कहीं कम है। पर वातावरण में एकत्रित होते जाते ग्रीनहाउस गैसों के विनाशकारी भंडार के मामले में प्रति व्यक्ति उत्सर्जित कण पर उत्सर्जक देश का नाम ढूंढ़ने की बजाय कुल उत्सर्जन देखते हुए यह बहुत छोटी–सी तसल्ली है।

बैंकांक रिपोर्ट महत्वपूर्ण तौर पर यह बताती है, कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने के लिए सकल घरेलू उत्पाद के एक प्रतिशत के छोटे–से अंश से अधिक का प्रभाव आर्थिक वृद्धि पर डालने की जरूरत नहीं हैं। यह सर्वज्ञात तथ्य है। बड़े विकसित देशों द्वारा अधिकारिक तौर पर स्वीकार भी किया जा चुका है कि वैश्विकरण से संचालित औद्योगिकरण के रास्ते से अर्जित तीव्र सकल घरेलू उत्पाद के फायदे समान रूप से नहीं बंटते। तो क्या फायदों के अत्यधिक शंकास्पद वितरण के साथ सकल घरेलू उत्पाद में थोड़ी–सी गिरावट की इतनी व्यग्रता से रक्षा की जाने की जरूरत है? ऊर्जा–क्षमता और नियंत्रण की मांग जैसे उपायों से अधिक समानता संभव है।

आगामी समय में हर राष्ट्र का इम्तहान होगा। जिस बात की जरूरत है, क्या वे उसे करेंगे, आईपीसीसी रिपोर्ट का संदेश स्पष्ट है– पृथ्वी को बचाने के लिए जलवायु परिवर्तन से तत्काल निपटना होगा। ऐसा करने के लिए पृथ्वी को दांव पर नहीं लगाया जा सकता। ❖

ओज़ोन परत : एक प्राकृतिक सुरक्षा कवच

❐ डॉ शैलेश कुमार मिश्र एवं डॉ अखिलेश कुमार मिश्र

ओज़ोन हमारे वायुमण्डल में उपस्थित अत्यंत महत्वपूर्ण अवयव हैं जिनके अणुओं की औसतन संख्या प्रत्येक 10 मिलियन वायु अणुओं में लगभग 3 होती है। इतनी कम मात्रा में होने के बावजूद ओज़ोन वायुमण्डल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ओज़ोन वायुमण्डल में दो मण्डलों में पाया जाता है। लगभग 90% ओज़ोन वायुमण्डल की स्ट्रेटोस्फियर में मौजूद है जिसकी ऊँचाई लगभग 18 किमी. से 50 किमी. तक है। यहाँ मौजूद ओज़ोन को सामान्तया ओज़ोन परत अथवा ओज़ोन छतरी कहा जाता है। शेष 10% ओज़ोन वायुमण्डल की ट्रोपोस्फीयर में मौजूद है। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन ऑक्साइड से पारस्परिक क्रिया द्वारे बनती है जो की वाहनों तथा अन्य स्रोतो से निकलती है। ओज़ोन परत की खोज़ फ्रांसीसी भौतिकविदों चार्ल्स फैब्री और हेनरी बिस्सोंन ने वर्ष 1913 में की थी। सर्वप्रथम एक अंग्रेज़ मौसम वैज्ञानिक जी.एम.बी. डॉबसन ने वर्ष 1920 से 1960 के बीच ओज़ोन पर शोध कार्य किया था। उन्हीं के नाम पर ओज़ोन का मापन डॉबसन इकाई (डी.यू.) में किया जाता है। परत की प्रत्येक 0.01 मिमी. मोटाई 1 डी.यू. के बराबर होती है।

ओज़ोन परत का महत्व

ओज़ोन परत सूर्य के प्रकाश में उपस्थित जीवधारियों के लिए अति विनाशकारी लघु तरंगदैर्ध्य विकिरणों या पराबैंगनी किरणें कहा जाता है, को अधिकांश रूप से अवशोषित कर लेती है और केवल थोड़ी मात्रा ही धरती की तरफ़ जाने देती है। इस प्रकार ओज़ोन परत हमारे जीवन की रक्षा करती है। तरंगदैर्ध्यों के आधार पर पराबैंगनी किरणें तीन प्रकार की होती हैं : पराबैंगनी किरणें–ए, बी एवं सी। लगभग 290 नैनोमीटर से कम तरंगदैर्ध्य की पराबैंगनी किरणें ओज़ोन परत के द्वारा हटा दी जाती हैं। ओज़ोन परत पराबैंगनी किरणें–बी का प्रतिच्छादन प्रभावशाली तरीके से करती है जोकि त्वचा जलन के लिये प्रमुख रूप से ज़िम्मेदार होती हैं। इनके ज्यादा संपर्क से अनुवांशिक बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है जिससे त्वचा कैंसर जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं।

सी.एफ. स्कोंबें ने ओज़ोन की खोज की और बताया की यह ऑक्सीजन का तीन परमाणुवीय समस्थानिक है अर्थात । यह एक नीले रंग की तथा तीक्ष्ण सुगन्ध वाली गैस है। ओज़ोन का निर्माण स्ट्रेटोस्फियर में होता है। जब ऑक्सीजन के अणु एक 240 नैनोमीटर से छोटे पराबैंगनी फोटॉन को अवशोषित कर विघटित हो जाते हैं तब ऑक्सीजन के 2 नवजात परमाणु बनते हैं जोकि ऑक्सीजन से मिलकर ओज़ोन बनाते हैं।

$$O_2 + UV\ (\lambda < 240\ nm) \rightarrow \overset{\cdot}{O} + \overset{\cdot}{O}$$

$$O + O_2 \rightarrow O_3$$

ओज़ोन के विघटनकारी पदार्थ

ओज़ोन परत, जोकि पृथ्वी के अति महत्वपूर्ण जीवन समर्थक तंत्रों में से एक है, अब उसके मोटाई में कमी आ रही है। जिसके कुछ प्रमुख कारण एवं उनके स्रोत निम्नवत हैं।

1. **क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स (CFCs):** लगभग 80% ओज़ोन विघटन के लिए ये जिम्मेदार हैं तथा यह फ्रीज़र्स, ड्राईक्लीनिंग पदार्थों, विसंक्रामक आदि में प्रयुक्त होते हैं। सी.एफ.सी. को 1928 में खोजा गया था। ये अविषाक्त, अज्वलनशील तथा अक्षयकारी हैं। इनका व्यापारिक नाम फ्रीयोन है।
2. **मिथाइल क्लोरोफार्म (CH_3CCl_3):** आसंजकों, ऐरोसोल्स और कई रासायनिक प्रक्रियायें।
3. **हाइड्रोक्लोरोफ्लुओरोकार्बन्स (HCFCs):** सी.एफ.सी. विकल्प के तौर पर प्रयुक्त परंतु ओज़ोन विघटन में प्रभावी।
4. **कार्बन टेट्राक्लोराइड (CCl_4):** मुख्यतः अग्निशामकों में तथा एक शोधन कर्मक के रूप में उपयोग किया जाता है।
5. **मिथाइल ब्रोमाइड (CH_3Br):** इसे एक प्रभावशाली कीटनाशक के तौर पर मृदा एवं कुछ अन्य कृषि उत्पादों के धूमीकरण हेतु तथा शोधन कर्मक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह अत्यंत जहरीला पदार्थ है।
6. **नाइट्रर्स ऑक्साइड (N_2O) :** अधिक रासायनिक उर्वरकों के खेतों में प्रयोग, जानवरों की खाद आदि सेस मृदा एवं समुद्रों में उपस्थित जीवाणु नाइट्रोजन–युक्त यौगिकों का अपघटन करके भी नाइट्रस ऑक्साइड पैदा करते हैं विश्व के लगभग एक तिहाई ऑक्साइड का उत्सर्जन मानव जनित है। सी.एफ.सीच. की की तरह माइट्रस ऑक्साइड भी जब धरती की सतह पर निकलती है तब स्थायी होती है परंतु स्ट्रेटोस्फियर में पहुँचने पर टूट कर अन्य गैसें बनाती है जिन्हें नाइट्रस ऑक्साइड्स कहा जाता है, जोकि ओज़ोन विनाशकारी अभिक्रियाओं को प्रारम्भ करती हैं।

ISSN : 2394-3912

ओज़ोन परत के अवक्षय की प्रक्रिया

सर्वप्रथम डॉ. मारिओ मोलिना तथा डॉ शेरवुड रोलाण्ड ने 1974 में बताया कि एक मानव निर्मित यौगिक समूह जिसको क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स कहा जाता है, ओज़ोन परत के नुकसान के लिए प्रमुख रूप से लगभग 80% ओज़ोन विघअन के लिए, जिम्मेदार हैं, हालांकि उनके इस मत को गंभीरता से तब लिया गया जब 1985 में एक सर्वेक्षण के माध्यम से अंटार्कटिका में ओज़ोन छिद्र का पता चला। क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स न तो वर्षा के साथ पृथ्वी पर वापस आते हैं और न ही अन्य रसायनों के साथ क्रिया करके नष्ट होते हैं। क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स निचले वायुमण्डल में साधारणतया टूट नहीं पाते बल्कि वे वायुमण्डल में 20 से 120 अथवा अधिक वर्षों तक मौजूद रह सकते हैं। उनकी इस स्थिरता की वजह से सी. एफ.सी. स्ट्रेटोस्फियर में गमन कर जाते हैं जहाँ पर वे सूर्य प्रकाश में उपस्थित पराबैंगनी किरणों से विघटित हो जाते हैं और क्लोरीन परमाणु मुक्त करते हैं। क्लोरीन परमाणु ओज़ोन के विघटन में सक्रिय रूप से हिस्सा लेता है। शुद्ध परिणाम के तौर पर दो ओज़ोन अणु तीन ऑक्सीजन अणुओं में बदल जाते हैं जबकि क्लोरीन दूसरे ओज़ोन अणुओं को नष्ट करने हेतु मुक्त हो जाता है। परिणामस्वरूप ओज़ोन का स्तर काफ़ी कम हो जाता है। सिर्फ 1 क्लोरीन परमाणु ओज़ोन के 1 लाख से ज्यादा परमाणुओं को नष्ट करने की शक्ति रखता है :

$$CF_2Cl_2 + UV \rightarrow Cl + CF_2Cl$$

$$Cl + O_3 \rightarrow Cl0 + O_2$$

$$ClO + O \rightarrow Cl + O_2$$

दुनिया भर में स्ट्रेटोस्फियर में ओज़ोन की औसत मात्रा लगभग 300 डी.यू. है। आमतौर पर ओज़ोन का उच्चतम स्तर (360 डी.यू.) उच्च अक्षांश के मध्य कनाड़ा एवं साइबेरिया में पाया जाता है। जब स्ट्रेटोस्फेरिक ओज़ोन 200 डी.यू. के नीचे आ जाता है तब यह ओज़ोन छिद्र की शुरूआत मानी जाती है। अंटार्कटिक ओज़ोन छिउ अंटार्कटिक स्ट्रेटोस्फियर में वह क्षेत्र है जहाँ का वर्तमान ओज़ोन स्तर 1975 के पूर्व के स्तर का 33% तक गिर गया है।

ओज़ोन अवक्षय के प्रभाव

पराबैंगनी–बी किरणों के अत्यधिक भेदन से मानव जाति के स्वास्थ्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ते हैं। इनमें सम्भावित खतरों की सूची में नेत्र संबंधित रोग, त्वचा नासूर एवं संक्रामण रोग प्रमुख हैं। पराबैंगनी किरणें आँखों की कॉर्निया तथा लेंस को नुकसान पहुँचाती हैं। पराबैंगनी–बी किरणों में दीर्घकाल तक पड़ने से मोतियाबिंद होने का खतरा रहता है। इसके अलावा पराबैंगनी–बी किरणें प्रतिकूल रूप से हमारे प्रतिरक्षा तंत्र पर भी असर डालती हैं जिससे कई संक्रामक रोगों के होने का डर रहता है। पराबैंगनी–बी किरणें मछलियों, झींगों, केकड़े, उभयचरों तथा अन्य जानवरों की आरम्भिक विकासात्मक अवस्थाओं को भारी आघात पहुंचा सकती हैं जिनमें गम्भीर रूप से प्रजन्न शक्ति में कमी तथा दुर्बल डिम्भक विकास हैं।

ओज़ोन संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

आज़ समूचा विश्वजगत ओज़ोन रिक्तिकरण के खतरों से भलीभाँति अवगत है। स्ट्रेटोस्फेरिक ओज़ोन संरक्षण के मद्देनजर वियना सम्मेलन का आयोजन सन् 1985 में किया गया था। साथ ही एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल, जिसका उद्देश्य ओज़ोन परत के लिए बहुत सारे नुकसानदेय पदार्थों जैसे कि कार्बन टेट्राक्लोराइड, विशाल क्लोरोफार्म, हाइड्रोब्रोमोफ्लुओरोकार्बन्स, हाइड्रोक्लोरोफ्लुओरोकार्बन्स, मिथाइल ब्रोमाइड, ब्रोमोक्लोरोमेथेन के निर्माण एवं इस्तेमाल पर पूर्णविराम लगाना था, का प्रारूप तैयार किया गया। इसको विभिन्न देशों के हस्ताक्षर हेतु 16 सितम्बर, 1987 को अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक विमानन संगठन के मुख्यालय जोकि मॉन्ट्रियल (कनाडा) में है, खोल दिया गया, यह प्रोटोकॉल। जनवरी, 1989 से प्रभावी किया गया, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 1995 में 16 सितंबर को अंतर्राष्ट्रीय ओज़ोन दिवस के तौर पर मनाने की घोषणा की जिसका उद्देश्य स्ट्रेटोस्फेरिक ओज़ोन परत के अस्तित्व के लिए हानिकारक पदार्थों एवं इस परत के विघअन से होने वाली समस्याओं के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाना था।

वर्ष 2009 में भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्री जयराम रमेश ने विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर बताया था कि देश में ओज़ोन विघटनकारी पदार्थों पर तय समयसीमा से 17 महीनें पूर्व ही पूर्णरूपेण रोक लगा दी गयी है। फिर भी सी.एफ. सी. के अवैध रूप से उत्पादन तथा तस्करी पर नियंत्रण लगाना एक चुनौती है। पड़ोसी देशों जैसे कि बांगलादेश एवं नेपाल से अक्सर ओज़ोन विघटनकारी पदार्थों के तस्करी की खबरें आती रहती हैं। चीन, कोरिया, ताइवान जैसे देशों में निर्मित सस्ते ओज़ोन विघटनकारी पदार्थों की बांग्लादेश एवं नेपाल से सीमा पार रास्ते से बंगाल जैसे राज्यों में तस्करी होना चिंतनीय है। अब बड़े राष्ट्रों द्वारा विकासशील देशों को सी.एफ.सी. के उत्पादन एवं इस्तेमाल को रोकने की उनकी प्रतिबद्धता में बढ़ चढ़ कर सहायता करना समय की माँग है। ओज़ोन परत के अस्तित्व को बचाये रखने के लिए जागरूकता फैलाने की दृष्टि से एक सहस्त्राब्दि संदेश इस तरह है।

'अपने आसमान को बचाओ, अपने आपको सुरक्षित करो,
ओज़ोन परत की रक्षा करो,

जानकारी

विकास का विष और नीलकंठ के अंश

❐ राणा प्रताप सिंह[1], महेश कुमार[2] एवं स्वाति सचदेव[3]

पेड़–पौधे न सिर्फ पृथ्वी के जीवों के लिए भोजन बनाते है, वायु का शुद्धिकरण करते हैं; जल, जमीन और वायु से तमाम जहरीले पदार्थों का भी शोषघ कर उन्हें ग्रहण कर लेने की क्षमता रखते हैं। प्रस्तुत है, ऐसी ही जानकारी।

सम्पादक

यूँ तो विकास का मुद्दा कोई नया मुद्दा नहीं है, पर इससे जुड़ी उम्मीदें नयी हैं। इसी मुद्दे पर केंद्र में नयी सरकार आई है। विकास यानी सड़कें, बिजली, पानी, कारखाने, शहर और रोज़गार आदि। परन्तु जो विकास हुआ है, उस के बाईप्रोडक्ट के रूप में निकले अनियंत्रित कचरे के प्रवाहन से अधिकांश नदियाँ नालों में बदलती जा रही हैं, और उनका पानी कम होता जा रहा है। जो पानी है, वह विषैला होता जा रहा है। धरती के गर्भ में भी पानी का स्तर तेजी से गिर रहा है। कहीं बाढ़ की विभीषिका होती है, तो कहीं सूखा पड़ जाता है। बढ़ती हुई गर्मी से पानी का वाष्पीकरण तो बढ़ गया है, पर बारिश नहीं बढ़ी है। ज्यादा गर्मी, ज्यादा भाप तो ज्यादा बारिश वाला सिद्धांत कहीं उलझ सा गया है। न पहले जैसे वन हैं, न बारिश, न जानवर। न कीड़े–मकोड़े, न रंग–बिरंगी तितलियाँ, न तरह–तरह की जंगली घासें और जड़ीबूटियाँ जो देशी दवाईयों की असीमित भण्डार थीं। हवा के धूल कण और विषैले रसायन नित नयी बीमारियों की अनचाही सौगात ला रहे हैं। लोग विकास के इन 'बाई–प्रोडक्ट्स' से त्रस्त हैं। और विकास, अपने ही ढंग से चल रहा है। बिना इन समस्याओं की परवाह किए।

यह विकास जो विनाश को न्योता दे रहा है, कैसे अच्छा माना जा सकता है? पर्यावरण को लेकर यह विकास तंत्र कतई गंभीर व जागरूक नहीं है। क्या विकास और पर्यावरण का संरक्षण परस्पर विरोधी चीज़ें हैं ? यह स्पष्ट है, कि पर्यावरणीय संतुलन टूट–फूट गया है। शहरीकरण तो हो रहा हैं, पर लोगों के लिए न अच्छे पार्क हैं, न बाग़–बगीचे। न खुली ज़मींन है, न पर्याप्त पानी। बिजली को लेकर रोज़ अखाड़ेबाजी हो रही है, पर अक्षय ऊर्जा, सौर ओर बायोगैस की योजनायें सुस्त पड़ी हैं। शहरों में शोर है, धुँआ है। भीड़ है। आपाधापी है। और नित नए मापदंड स्थापित करते अपराधों की दहशत है। शुद्ध हवा को तरस गए हैं, लोग। नदियों में कारखानों का कचरा जमा हो रहा है। वातावरण में बासी और ज़हरीली हवा तैर रही है। और हर ओर कान फाड़ू शोर है। विकास तो चाहिए पर किसी न किसी को इसके इस अनचाहे उप–उत्पाद को नीलकंठ की तरह सहेजना–संभालना पड़ेगा।

गाँव और शहरों के उपेक्षित इलाकों के लोग बहुत परेशान हैं। वे भी शहरों की तरह बिजली चाहते हैं। पानी चाहते हैं। तड़क–भड़क भरी सुविधाओं वाली जिंदगी चाहते हैं। बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा चाहते हैं। अच्छे अस्पताल, दवाईयाँ, इलाज और बीमारों को अस्पताल पहुँचाने के लिए साधन और सड़कें चाहते हैं। पर उनके खेत बँटते जा रहे हैं। साधन घटते जा रहे हैं। मौसम आँख–मिचौली करने लगा है। कभी अचानक गर्मी तो कभी अनचाही बरसात। कभी सूखा तो कभी बाढ़। साल भर सहेजी हुई फ़सल कभी कीड़े खा जाते, कभी गर्मी, तो कभी बारिश के ओले–पाले। न पहले जैसी ऋतुए रहीं, न हवाएं, न ही अमराईयां। न पहले जैसे खेत रहे, न खलिहान, न गीत, न सामूहिकता। मशीने गेहूँ काट देतीं है, और जड़ों को सड़ा कर खाद बनाने की जगह जला कर धुँआ और ताप पैदा करने का फ़ैशन बन गया है, जिससे जमीन के आवश्यक जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। यह विकास को सिर्फ आर्थिक विकास के रूप में देखने की भूल का परिणाम है। विकास एक आर्थिक प्रक्रिया तो है ही, साथ ही वह एक पर्यावरणीय, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है।

'टिकाऊ विकास' या 'पर्यावरण हितैषी विकास' की अवधारणा नई नहीं हैं। इससे जुड़ी तमाम जानकारियाँ इंटरनेट पर आसानी से ढूढ़ी जा सकती हैं। इस पर अक्सर चर्चा होती है, और मज़े की बात यह है, हर कोई इसकी जरूरत का समर्थन करता हैं, जनता भी। नेता भी। अफ़सर भी। वैज्ञानिक भी। और प्रशासक भी। कोर्ट

प्रोफेसर[1], शोध छात्र[2, 3], पर्यावरण विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ–226025, भारत
ई–मेल: cceseditor@gmail.com, www.ranapratap.in

ISSN : 2394-3912

भी। शासन भी और प्रशासन भी (पर्यावरण हितैषी एन.जी.ओ. तो हर समय इन मुद्दों पर सेमीनार करते रहते हैं)। पर तब भी विकास से जुड़ा विनाश रोका नहीं जा सका है। इसके कारणों की सही पड़ताल से ही नयी व्यवस्थाएं इस विनाशशील विकास को एक टिकाऊ और मनुष्य– हितैषी विकास में बदल सकती हैं।

पृथ्वी पर बढ़ते पर्यावरण संकट पर वैश्विक चिंता और विमर्श लगभग साठ के दशक से ही शुरू हो गए थे। वैश्विक गर्मी से जुड़ी समस्याओं के अहसास के बाद तो 'वातावरण परिवर्तन' चर्चाओं के लिए एक निहायत ज़रूरी विषय माना जाने लगा, पर नतीजे वही ढाक के तीन पात। इसे निपटने के उपाय अब भी ऊँट के मुँह में जीरे की तरह ही है।

भारत में इस के सन्दर्भ में कानून हैं। पर्यावरण से जुड़े सरकारी विभाग हैं। पैसा है। अफ़सर हैं। ऊपर से नीचे तक शासन–प्रशासन का तंत्र है। पर तब भी कुछ हो क्यों नहीं रहा है? कोर्ट, नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल जैसी संस्थाए और पर्यावरणविद्, विकास के कर्णधार माने जाने वाले बिल्डर, माइनर, उद्योगपति, शासन और प्रशासन के लोगों के बीच विकास के में खलनायक की तरह देखे जाते हैं।

अब समय आ गया है कि, देश को चलाने वाला तंत्र आर्थिक विकास, विकास से जुड़े विनाश और समावेशी तथा अविनाशी टिकाऊ विकास पर एक गंभीर बहस चलाए। जिले से राष्ट्रीय स्तर तक सरकारी एवं गैर–सरकारी विशेषज्ञों की टीम बना कर स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस 'मिथ' को तोड़े जोने की ज़रूरत है, कि आर्थिक विकास और पर्यावरण संतुलन दो परस्पर विरोधी अवधारणायें हैं। अगर पिछले दो–तीन दशकों में पर्यावरण संरक्षण से जुड़े कानूनी और ढांचागत संस्थाओं को ईमानदारी से विश्लेषण करें, तो हम पाएंगे कि कानूनों और नीतियों पर बेहतर काम हुआ है। हालाँकि इनमें सुधारों की अपार गुंजाइश है। पर इन नीतियों और कानूनों को कार्यान्वित करने वाली संस्थाओं मसलन, शासन–प्रशासन, इंजीनियरिंग विभाग, पर्यावरण विभाग तथा सबसे अधिक केंद्रीय और राज्य स्तरीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड्स नौकरशाही, लालफीताशाही, निकम्मेपन, भ्रष्टाचार, अधिकारों की कमीं या अन्य जो भी कारण हैं, इनके चलते अप्रभावी और गैर ज़वाबदेह बने हुए हैं। नदियाँ मर रहीं हैं। हवा विषाक्त हो रही है। पानी सूख रहा है। बिजली सता रही है। उम्मीद है, सरकार की नज़र विकास और विनाश की इस आंख–मिचौली की ओर जाएगी। और वह उस नीलकंठ का आवाहन करेगी, जो विकास के विष को पीकर कंठ में धारण कर सके। इस नील कंठ के अंश बैक्टीरिया, सूक्ष्मजीवी पौधों, तमाम फूल और बिना फूल वाले पौधों में अधिक है, जो इन विषैले तत्वों को सोख लेते हैं, या तोड़ देते हैं। इन जीवों के द्वारा किये जा रहे विषैले पदार्थों के उपचार पर जीव विज्ञान और पर्यावरण विज्ञान की एक शाखा विकसित हुई है, जिसे जैवोपचारण (बायोरेमेडीएसन) कहते हैं।

मोटे तौर पर कहें तो बैक्टीरिया खेतों, कारखानों और घरों में उपयोग में आने वाले विषैले कार्बनिक रसायनों को कम विषैले या विष विहीन रसायनों में बदल देते हैं, हालाँकि यह काम कई पौधे भी विभिन्न तरीकों से करते हैं। इसी तरह पारा, सीसा जैसे अकार्बनिक विषैले रसायनों को जमीन, पानी या हवा से बहुत से पौधे सोख लेते हैं। बैक्टीरिया और पौधों पर आधारित जैवोपचारण की यह तकनीक दुनिया के तमाम देशों में पेशेवर और व्यावसायिक तरीके विषाक्त वातावरण को साफ़ करने के लिए किया जा रहा है। हमारे देश में अभी इस तकनीक का उचित उपयोग बड़े पेशेवर व्यावसायिक स्तर पर कम ही हो रहा है। इस पर ध्यान देने की जरूरत है।

स्यूडोमोनास पुटिडा *(Pseudomonas putida)*, डीकलोरोमोनास एरोमेटिका *(Dechloromonas aromatic)*, फेनेरोकीट क्राइसोस्पोरियम *(Phanerochaete chrysosporium)*, और मैथीलिबियम पेट्रोलेइफिलम *(Methylibium petroleiphilum)* जैसे बैक्टीरिया पेट्रोलियम यौगिकों की विषाक्तता को नष्ट करने या कम करने में सक्षम हैं। इसी तरह जल में और जमीन पर पाए जाने वाले पौधे अनेक तरह के कार्बनिक एवं अकार्बनिक विषैले तत्वों को सोंख लेते हैं।

इनके इन प्रकार के गुणों के आलावा जीन इन्जीनियरिंग से कई बैक्टीरिया और पौधों की विषैले पदार्थों को नष्ट करने की क्षमता बढ़ाई भी जा सकती है। एक भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. आनंद मोहन चक्रवर्ती ने सबसे पहले इसी तकनीक से समुद्र में गिरे तेल को नष्ट करने वाला बैक्टीरिया स्यूडोमोनास पुटिडा बनाया था जिसे 'सुपरबग' कहते हैं।

इसके बाद तमाम वैज्ञानिकों ने बहुत से पौधों एवं सूक्ष्मजीवों में नये प्रकार के जीन अभियांत्रिक तकनीकों द्वारा वातावरण से विष सोखने के लिए अधिक उपयोगी बनाने की कोशिश की है। कई देशों में इन तकनीकों और पौधों तथा सूक्ष्मजीवों का प्रयोग बड़े स्तर पर हो रहा है। भारत और अन्य विकासशील देश अभी इस तकनीक का उपयोग करने में बहुत पीछे हैं। हमारी जैव–विविधता इस तकनीक के लिए अधिक माकूल है। छोटे–छोटे वनों का विकास करके इन विषाक्त पदार्थों को लकड़ी में जज्ब कर देना एक बेहतर, सस्ता एवं टिकाऊ उपाय है। ❖

जानकारी

क्लोरपाइरीफॉस कीटनाशक से गैर लक्ष्य जीवों पर दुष्प्रभाव

❐ डा. आभा मिश्रा[1] और परमेश्वर सिंह[2]

डा. आभा मिश्रा[1], सहायक प्रोफेसर एवं श्री परमेश्वर सिंह[2], शोध छात्र हैं। डा. मिश्र मछलियों पर कीटनाशकों के दुष्प्रभाव को लेकर लम्बे समय से शोधरत हैं।

सम्पादक

क्लोरपाइरीफॉस एक क्रिस्टलीय आरगेनोफास्फेट ग्रुप का कीटनाशक है। जिसको सबसे पहले डाऊ केमिकल कंपनी द्वारा 1965 में बाजार में लाया गया था। क्लोरपाइरीफॉस, एसिटाइलकोलिनेस्टरेज को बांधकर कीड़े के तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालता है। जिससे कीट का तन्त्रिका तंत्र खराब हो जाता है और अन्ततः वह मर जाता है।

क्लोरपाइरीफॉस मनुष्यों के लिए कम विषैला होता है, किन्तु इसके अधिक प्रयोग से स्नायत्रिक जोखिम एवं स्व–प्रतिरक्षित विकार हो सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका पर्यावरण संरक्षण एजेन्सी के अनुसार कृषि में इस्तेमाल होने वाले आरगैनोफास्फेट ग्रुप के कीटनाशकों में से एक क्लोरपाइरीफॉस है। डाउ केमिकल कंम्पनी के मुताबिक क्लोरपाइरीफॉस लगभग 100 देशों में इस्तेमाल के लिए पंजीकृत किया गया है। और हर साल लगभग 85 लाख एकड़ फसल के लिए प्रयोग किया जाता है। (चित्र 1)

क्लोरपाइरीफॉस अततः डाईथइलथायो– फास्फोराइल के साथ 3,5,6 ट्राइक्लोरो–2– पाइरीडीनॉल प्रतिक्रिया करके 3–मेथाईलपाइरीडीन से एक मल्टीस्टेप संश्लेशण के माध्यम से उत्पादन किया जाता है।

मृदा एवं भूजल में टूटने की क्षमता :– क्लोरपाइरीफॉस मृदा में प्रायः अल्प मात्रा में पाया जाता है। मृदा में क्लोरपाइरीफॉस के आधे जीवन काल आमतौर पर 60 से 120 दिन होता है। लेकिन मृदा की अम्लता एवं क्षारक्ता पी.एच. पर निर्भर करता है। कभी–कभी आर्ध जीवन काल की अवधि एक साल तक ज्ञात की गयी। क्लोरपाइरीफॉस के अवषेश लगभग 10 से 14 दिनों तक फसल के सतहों पर रहते है। आकड़ों से संकेत मिलता है कि सलाद मे प्रयोग होने वाली सब्जियाँ क्लोरपाइरीफॉस के अवयओं को सग्रहित कर सकती हैं।

लक्ष्य जीवों पर क्लोरपाइरीफॉस का प्रभावः– क्लोरपाइरीफॉस कीट के सामान्य तन्तिकातन्त्र को प्रभावित करके मारता है। सीपीएफ न्यूरोट्रांसमिटेड एसिटाइलकोलाइन को तोड़ना तथा तंत्रिका तन्त्र तोड़ना और संमावित अतः श्रावी ग्रुप को प्रभावित करता है। अन्तर्ग्रथनी मे फाक एवं न्यूरोटाक्सिटी के परिणामस्वरूप कीट मर जाता है।

गैर लक्ष्य जीवों पर क्लोरपाइरीफॉस का प्रभाव :– फसल सुरक्षा के लिए कृषि में कीटनाशकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है। जिसका लक्ष्य होता है कि फसल में लग रहे कीट से सुरक्षा परन्तु छिड़काव करते समय कीटनाशक जलीय वातावरण में चला जाता है, जिससे वह जलीय वातावरण को प्रभावित करता है। जलीय वातावरण में रह रहे जीव जैसे केचुआ. मेढ़क. जोक. मछली इत्यादि के जीवन को प्रभावित करता है।

गैर लक्ष्य जीव मछली (गिरई) पर क्लोरपाइरीफॉस का प्रभावः– क्लोरपाइरीफॉस का प्रभाव गैर लक्ष्य एवं लक्ष्य जीवों पर लगभग सामान पाया। जो कि पूरे शरीर को विभिन्न प्रणालियों में अलग ढंग से कोटिएस्ट्रेस के स्तर को प्रभावित करता है। हमारी शोध प्रयोगशाला के विगत वर्षों के प्रयोगों में पाया गया कि क्लोरपाइरीफॉस से सादा जल में रहने वाली मछली गिरई के, व्यवहारिक, वाह्य संरचना एवं रासायनिक अवयओं में उतार चढ़ाव पाया गया है। (चित्र 2–9)

व्यवहारिक जन्तु विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
ईमेलः drabhamishra@gmail.com

i. **व्यवहारिक परिवर्तनः–** क्लोरपाइरीफॉस के परीक्षणों द्वारा पाया गया कि गिरई मछली अपने सामान्य व्यवहार (चित्र 2) को खोती जा रही है। कन्ट्रोल की तुलना मे उसका एक साथ न घूमना, शरीर के सन्तुलन को खोना, सुस्त होना, ऑक्सीजन के लिए बार–बार सतह पर आना एवं तैरने में फिन का सही चुनाव नहीं कर पाना सम्मिलित है।

ii. **वाह्य संरचना में परिवर्तन :–** क्लोरपाइरीफॉस के परीक्षणों द्वारा पता चला है, कि यह मछली के वाह्य संरचना को-प्रभावित करता है। शोध प्रयोगशाला के निष्कर्षो मे नियंत्रित (चित्र 2) के सापेक्ष पाया गया कि प्रभावित वयस्क मे अतिश्लेष्म का उत्सर्जन (चित्र 3), मेरूरज्जा में झुकाव (चित्र 4), मुंह की माँसपेशियो मे परिवर्तन (चित्र 5), परिवर्तित नेत्र संरचना (चित्र 6), त्वचा पर घाव (चित्र 7) जैसा प्रभाव डालता है। जिससे मछली के जीवन में खतरा बढ जाता है।

iii. **रासायनिक अवयवों में उतार–चढ़ावः–** क्लोरपाइरीफॉस का प्रभाव नियंत्रित के सापेक्ष प्रभावित मछली के परिक्षण में पाया गया, कि क्लोरपारीफास मछली पर व्यवहारिक तथा वाह्य संरचना में ही प्रभाव नही डालता है, अपितु उसके रक्त सिरम की जैव रासायनिक अवयओं, को भी प्रभावित करता है। चूँकि रक्त सीरम ही सम्पूर्ण शरीर में शारीरिक गतिविधिओं के लिए पोषक पदार्थ पहुँचाता है। अतः रक्त सीरम में होने वाले इस प्रकार के रासायनिक अवयओं में उतार–चढ़ाव किसी भी जीव के स्वास्थ्य जीवन और अस्तित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

iv. **भ्रूणीय विकास का प्रभाव :–** क्लोरपाइरीफास का भ्रूणीय विकास में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जैसे क्षतिग्रस्त मस्तिष्क, विकास, मेरूरज्जा, छोटी बड़ी आंखों का होना (क्षतिग्रस्त आंप्टिक, थैली) एव अण्डो की विकास दर नियन्त्रित की अपेक्षा कम होती जाती है। विकासात्मक प्रयोग के उपरान्त, ये पाया गया कि सामान्य विकास दर व्लासटुला चरण से लगातार धीमी पडने लगती है। नियंत्रित के सापेक्ष प्रभावित जीरा मे क्षतिग्रस्त मुंह दोष के साथ फैला हुआ होठ ज्यादातर होते है। अतः इस प्रकार के असामान्य भ्रूणीय विकास (चित्र 8–9) से गिरई मछली की जलीय वातावरण में सख्या दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है।

गैर लक्ष्य जीवों को बचाने हेतु उपायः– गैरलक्ष्य जीवों पर सबसे ज्यादा प्रभाव कृषि सुरक्षा में प्रयोग होने वाले रासायनिक खाद एवं कीटनाशक है। अतः किये गये शोध प्रयोगशाला

चित्र 1: परिदृश्य किसानों द्वारा धान की फसल में कीटनाशक का छिड़काव

चित्र 2. नियंत्रित वयस्क 3. अतिश्लेष्म का उत्सर्जन 4. मेरूरज्जा में टेडापन 5. मुँह का खुलना 6. आंख का घसना 7. त्वचा पर घाव 8. नियंत्रित जीरा 9. प्रभावित जीरा

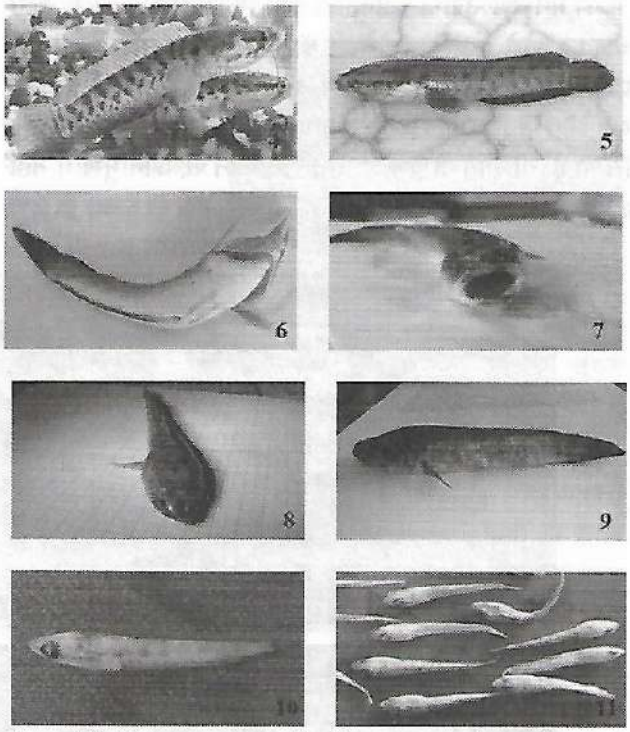

से निष्कर्ष निकलता है, कि क्लोरपाइरीफास की मात्रा वाले कीटनाशकों का प्रयोग उसकी दर मात्रा व अनिवार्यता को ध्यान मे रखकर की जाए। रासायनिक खाद व कीटनाशक से होने वाली हॅानियो को ध्यान मे रखते हुए जैविक खाद व जैविक कीटनाशक का प्रयोग फसल सुरक्षा एवं प्रबन्धन में किया जाना चाहिए। ❖

प्राचीन साहित्य

भाग्य और कर्म

❑ रमा शंकर मिश्र 'शास्त्री'

श्री रमाशंकर मिश्र 'शास्त्री', सेवा निवृत्त प्रधानाध्यापक हैं और अपने गाँव पृथ्वीपुर (जिला कुशीनगर) में रहते हैं। वे पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति से सक्रियता से जुड़े हुए है।

सम्पादक

भाग्य और कर्म के तराजू में किसका पलड़ा भारी है, इस पर हमेशा चर्चा होती रही है और होती रहेगी। लेकिन इस विषय में चाणक्य ने अपनी बात बहुत ही सीधे और स्पष्ट शब्दो में कही है।

उद्यमेन हि सिहदयंति कर्याणि न मनोरथैः। नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रतिषंति मुखे मृगाः।।

मनोरथ उद्यमी व्यक्ति के ही सफल होते हैं। मृग स्वयं चलकर सोते हुए सिंह के मुख में नहीं जाता, उसे भी इस हेतु प्रयास करना पड़ता है। भाग्य में चाहे कुछ भी लिखा हो, लेकिन कर्म किए बिना उसकी प्राप्ति असम्भव है। भाग्य में अगर आम खाना लिखा है, तो आम के पेड़ के नीचे लेट जाने से, आम मुख में नहीं आएंगे। उसके लिए कर्म करना ही होगा।

उद्योगिनं पुरूष सिंह मुपैति लक्ष्मी, है। वेन देयमिति कापुषा वदन्ति।

द्यैवं निहत्य कुरू पौरूष आत्मशक्त्याः, यत्ने कृते यदि न सिद्यति को भदोषाः।।

उद्योगी पुरूष को लक्ष्मी स्वयं प्राप्त हो जाती है। ये वही देगें, इस प्रकार कायर पुरूष कहा करते है। अतः मनुष्य को भाग्य का भरोसा छोड़कर कर्म करना चाहिए। भगवान कृष्ण की अर्जुन को यही उपदेश दिग।

कर्मण्येवाधिकारस्तें मा फलेषु कदाचन, ss अर्थात् भाग्य बहुत बलशाली है, लेकिन बात अगर कर्म से मुकाबले की हो तो भाग्य को हार माननी पड़ती है। ❖

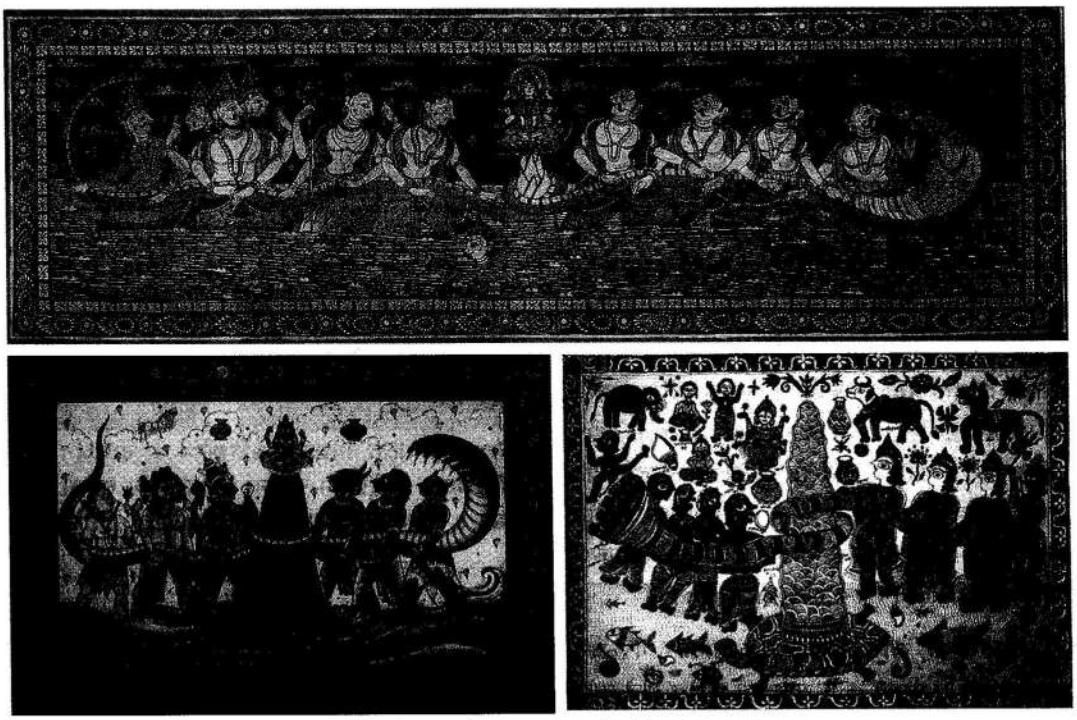

मधुबनी कला में समुद्रमंथन और विष्णु दरबार

ISSN : 2394-3912

व्यक्तित्व

सबसे कम उम्र की नोबल पुरस्कार विजेता : मलाला युसुफ़ज़ई

मलाला युसुफ़ज़ई (पश्तोः जन्मः 12 जुलाई 1997) को बच्चों के अधिकारों की कार्यकर्ता होने के लिए जाना जाता है। वह पाकिस्तान के ख़ैबर–पख़्तूनख़्वा प्रान्त के स्वात जिले में स्थित मिंगोरा शहर की एक छात्रा है। 13 साल की उम्र में ही तहरीक–ए– तालिबान शासन के अत्याचारों के बारे में एक छद्म नाम के तहत बीबीसी के लिए ब्लॉगिंग द्वारा स्वात के लोगों में नायिका बन गयी। अक्टूबर 2012 में, मात्र 14 वर्ष की आयु में अपने उदारवादी प्रयासों के कारण वह आतंकवादियों के हमले का शिकार बनी, जिससे वह बुरी तरह घायल हो गई और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया की सुर्खियों में आ गई।

बाल्यावस्था : मलाला युसुफ़ज़ई मिंगोरा, जो स्वात का मुख्य शहर है, में रहती है। मिंगोरा पर तालिबान ने मार्च 2001 से मई 2009 तक कब्जा कर रखा था, जब तक की पाकिस्तानी सेना ने क्षेत्र का नियंत्रण हासिल करने के लिए अभियान शुरू किया। संघर्ष के दौरान, 11 साल की उम्र में ही मलाला ने डायरी लिखनी शुरू कर दी थी। वर्ष 2009 में छद्म नाम "गुल मकई" के तहत बीमारी ऊर्दू के लिए डायरी लिख मलाला पहली बार दुनिया की नजर में आई थी। जिसमें उसने स्वात में तालिबान के कुकृत्यों का वर्णन किया था और अपने दर्द को डायरी में बयां किया। डायरी लिखने की शौकीन मलाला ने अपनी डायरी में लिखा था, 'आज स्कूल का आखिरी दिन था, इसलिए हमने मैदान पर कुछ ज्यादा देर खेलने का फ़ैसला किया। मेरा मानना है, कि एक दिन स्कूल खुलेगा, लेकिन जाते समय मैंने स्कूल की इमारत को इस तरह देखा, जैसे मैं यहां फिर कभी नहीं आऊंगी।'

मलाला ने ब्लॉग और मीडिया में तालिबान की ज्यादतियों के बारे में जब से लिखना शुरू किया तब से उसे कई बार धमकियां मिलीं। मलाला ने तालिबान के कट्टर फ़रमानों से जुड़ी दर्दनाक दास्तानों को महज 11 साल की उम्र में अपनी कलम के जरिए लोगों के सामने लाने का काम किया था। मलाला उन पीड़ित लड़कियों में से है जो तालिबान के फरमान के कारण लंबे समय तक स्कूल जाने से वंचित रहीं। तीन साल पहले स्वात घाटी में तालिबान ने लड़कियों के स्कूल जाने पर पाबंदी लगा दी थी। लड़कियों को टीवी कार्यक्रम देखने की भी मनाही थी। स्वात घाटी में तालिबानियों का कब्जा था और स्कूल से लेकर कई चीजों पर पाबंदी थी। मलाला भी इसकी शिकार हुई। लेकिन अपनी डायरी के माध्यम से मलाला ने क्षेत्र के लोगों को न सिर्फ जागरूक किया बल्कि तालिबान के खिलाफ खड़ा भी किया। तालिबान ने वर्ष 2007 में स्वात को अपने कब्जे में ले लिया था और लगातार कब्जे में रखा। तालिबानियों ने लड़कियों के स्कूल बंद कर दिए थे। कार में म्यूजिक से लेकर सड़क पर खेलने तक पर पाबंदी लगा दी गई थी। उस दौर के अपने अनुभवों के आधार पर इस लड़की ने बीबीसी उर्दू सेवा के लिए जनवरी, 2009 में एक डायरी लिखी थी। इसमें उसने जिक्र किया था, कि टीवी देखने पर रोक के चलते वह अपना पसंदीदा भारतीय सीरियल **राजा की आएगी बारात** नहीं देख पाती थी।

वर्ष 2009 में न्यूयार्क टाइम्स ने मलाला पर एक फिल्म भी बनाई थी। स्वात में तालिबान का आंतक और महिलाओं की शिक्षा पर प्रतिबंध विषय पर बनी। इस फिल्म के दौरान मलाला खुद को रोक नहीं पाई और कैमरे के सामने ही रोने लगी। मलाला डॉक्टर बनने का सपना देख रही थी और तालिबानियों ने उसे अपना निशाना बना दिया। उस दौरान दो सौ लड़कियों के स्कूल को तालिबान से ढहा दिया था। वर्ष 2009 में तालिबान से साफ कहा था कि 15 जनवरी के बाद एक भी लड़की स्कूल नहीं जाएगी। यदि कोई इस फतवे को मानने से इंकार करता है तो अपनी मौत के लिए वह खुद जिम्मेदार होगी।

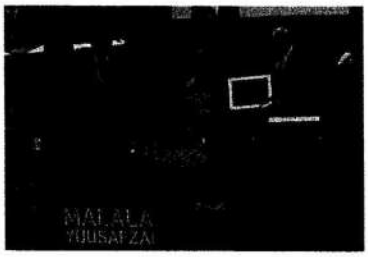

विचारों की स्वतंत्रता के लिए सखारोव पुरस्कार – स्ट्रासबर्ग में यूरोपीय संसद द्वारा सम्मानित, 20 नवंबर 2013

जब स्वात में तालिबान का आंतक कम हुआ तो मलाला की पहचान दुनिया के सामने आई और उसे बहादुरी के लिए अवार्ड से नवाजा गया। इसी के साथ वह इंटरनेशनल चिल्ड्रेन पीस अवार्ड (2011) के लिए भी नामित हुई। (2011 में वे नहीं जीत पाईं, लेकिन बाद में 2013 में उन्हें यह अवार्ड भी मिला)।

हत्या का प्रयास

पाकिस्तान की 'न्यू नेशनल पीस प्राइज' हासिल करने वाली 14 वर्षीय मलाला यूसुफजई ने तालिबान के फरमान के बावजूद लड़कियों को शिक्षित करने का अभियान चला रखा है। तालिबान

आतंकी इसी बात से नाराज होकर उसे अपनी हिट लिस्ट में ले चुके थे। संगठन के प्रवक्ता के अनुसार, 'यह महिला पश्चिमी देशों के हितों के लिए काम कर रही हैं। इन्होंने स्वात इलाके में धर्मनिरपेक्ष सरकार का समर्थन किया था। इसी वजह से यह हमारी हिट लिस्ट में हैं। अक्टूबर 2012 में, स्कूल से लौटते वक्त उस पर आतंकियों ने हमला किया जिसमें वे बुरी तरह घायल हो गई। इस हमले की जिम्मेदारी तहरीक–ए–तालिबान पाकिस्तान (टीटीपी) ने ली। बाद में इलाज के लिए उन्हें ब्रिटेन ले जाया गया। जहाँ डॉक्टरों के अथक प्रयासों के बाद उन्हें बचा लिया गया।

पाकिस्तान का राष्ट्रीय युवा शांति पुरस्कार– 2011

अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में शांति को बढ़ावा देने के लिए उसे साहसी और उत्कृष्ट सेवाओं के लिए, उसे पहली बार 19 दिसम्बर 2011 को पाकिस्तानी सरकार द्वारा 'पाकिस्तान का पहला युवाओं के लिए राष्ट्रीय शांति पुरस्कार मलाला युसुफजई को मिला था। मीडिया के सामाने बाद में बोलते हुए, उसने शिक्षा पर केन्द्रित एक राजनीतिक दल बनाने का इरादा रखा। सरकारी गलर्स सेकेंडरी स्कूल, मिशन रोड, को तुरंत उसके सम्मान में मलाला युसुफजई सरकारी गर्ल्स सेकेंडरी स्कूल नाम दिया गया।

अंतर्राष्ट्रीय बाल शांति पुरस्कार के लिए नामांकन (2011)

अंतर्राष्ट्रीय बच्चों की वकालत करने वाले समूह किड्स राइट्स फाउंडेशन ने युसुफजई को अंतर्राष्ट्रीय बाल शांति पुरस्कार के लिए प्रत्याशियों में शामिल किया, वह पहली पाकिस्तानी लड़की थी जिसे इस पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया। दक्षिण अफ्रीका के नोबेल पुरस्कार विजेता डेसमंड टूटू ने एम्स्टर्डम, हॉलैंड में एक समारोह के दौरान 2011 के इस नामांकन की घोषणा की, लेकिन युसुफजई यह पुरस्कार नहीं जीत सकी और यह पुरस्कार दक्षिण अफ्रीका की 17 वर्षीय लड़की ने जीत लिया। यह पुरस्कार बच्चों के अधिकारों के लिए काम करने वाली संस्था हर साल एक लड़की को देती है।

अर्जेंटीना में अंतर्राष्ट्रीय काव्य महोत्सव 2013 के दौरान मलाला को सम्मान

अंतर्राष्ट्रीय बाल शांति पुरस्कार (2013)

नीदरलैंड के किड्स राइट्स संगठन ने इसकी जानकारी देते हुए बताया कि आगामी छः सितम्बर को हेग में आयोजित होने वाले एक समारोह में वर्ष 2011 का नोबल शांति पुरस्कार हासिल करने वाली मतहला अधिकार कार्यकर्ता तवाकुल रहमान मलाला को बाल शांति पुरस्कार से सम्मानित करेंगी। किड्स राइट्स संगठन उन लोगों को सम्मानित करता है, जो कि बाल अधिकारों के लिए कोई विशेष कार्य करते हैं। इससे पहले बहादुर मलाला सयुंक्त राष्ट्र में नोबल शांति पुरस्कार के प्रतियोगी के तौर पर जुलाई में भाषण दे चुकी हैं।

साख़ारफ़ (सखारोव) पुरस्कार (2013)

मलाला युसुफ़जई को यूरोसंसद द्वारा वैचारिक स्वतंत्रता के लिए साख़ारफ़ पुरस्कार प्रदान किया गया है। बच्चों के शिक्षा के अधिकार के लिए संघर्ष में महती भूमिका निभाने के लिए उन्हें यह पुरस्कार दिया गया है।

मैक्सिको का समानता पुरस्कार (2013)

मलाला यूसुफ़जई को इक्केलिटी एंड नान डिस्क्रिमीनेशन का अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार दिये जाने की घोषणा हुई है। मैक्सिकों में भेदभाव निरोधक राष्ट्रीय परिषद की ओर से जारी बयान में यह जानकारी दी गई। बयान में कहा गया है कि मलाला को यह पुरस्कार मानवाधिकारों की रक्षा के लिए उसके प्रयासों विशेषतया जाति, उम्र, लिंग में भेदभाव किए बिना शिक्षा के अधिकार के लिए संघर्ष को देखते हुए दिया जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र का 2013 मानवाधिकार सम्मान (ह्यूमन राइट अवॉर्ड)

संयुक्त राष्ट्र ने मलाला यूसुफजई को 2013 का मानवाधिकार सम्मान (ह्यूमन राइट अवॉर्ड) देने की घोषणा की। यह सम्मान मानवाधिकार के क्षेत्र में बेहतरनी उपलब्धियों के लिए हर पांच साल में दिया जाता है। इससे पहले यह सम्मान पाने वालों में नेल्सन मंडेला, पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर व एमनेस्टी इंटरनेशनल आदि शामिल हैं। मलाला के अतिरिक्त पांच अन्य को भी इस अवॉर्ड से सम्मानित किया गया है।

नोबेल पुरस्कार

बच्चों और युवाओं के दमन के ख़िलाफ़ और सभी को शिक्षा के अधिकार के लिए संघर्ष करने वाले भारतीय समाजसेवी कैलाश सत्यार्थी के साथ संयुक्त रूप से उन्हें शांति का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। 10 दिसम्बर 2014 को नार्वे में आयोजित एक कार्यक्रम में यह पुरस्कार प्रदान किया गया। पुरस्कार प्रदान करते ही सभागृह में उपस्थित सभी ने खड़े होते ही तालियों की गूंज की। 17 वर्ष की आयु में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाली मलाला दुनिया की सबसे कम उम्र वाली नोबेल विजेता बन गयी।

'वीकीपीडिया' से साभार

ISSN : 2394-3912

शोध

भारतीय समाज में कन्या–भ्रूण हत्या के सामाजिक कारण

❐ डॉ. अर्चना सेंगर सिंह

डा. अर्चना सेंगर सिंह समाजशास्त्री हैं, और न्यूजर्सी अमेरिका में रहती हैं। वे कन्या भ्रूण हत्या के समाजशास्त्र और औरतों की सेहत से जुड़े मुद्दों पर काम करती हैं।

सम्पादक

भारतीय समाज में लड़कियों को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता है। लड़कों की चाह हमारे समाज में ज्यादा होती है। हर तबके के व्यक्तियों में, चाहे वे पढ़े–लिखे हो, या अशिक्षित।

अगर किसी व्यक्ति की एक लड़की पहले से है और दूसरा शिशु बच्ची है, तो अमूमन, माँ के गर्भ में उसका परिवार, ससुराल, पति माँ पर दबाव डालकर इस शिशु की हत्या करवा गर्भपात करवा देते हैं। यह भी नहीं सोचा जाता है, कि माँ किस शारीरिक व मानसिक पीड़ा से गुजर रही होती है।

लड़की के चुने हुए लिंग का परीक्षण करवा कर उसका गर्भपात करवाना कहलाता है। जैसे–जैसे इस तकनीकी का ज्ञान बढ़ रहा है इसका उपयोग भी बढ़ रहा है। भारत में 1978 में लिंग परीक्षण तकनीकी का प्रयोग होना शुरू हुआ। Ultrasound Senography (Ultra Senography/Aminocentesis) जिनका प्रयोग भ्रूण के जाँच के लिये किया जाता है, उसका मूल उद्देश्य है कि शिशु भ्रूण माँ के गर्भ में ठीक है या नहीं, उसकी स्थिति कैसी है। माँ के गर्भ में अगर भ्रूण की हालत ठीक नहीं है, और उसे माँ और शिशु दोनों की जान की खतरा है ऐसे हालत में आप गर्भपात करवा सकते है। यह कानूनन जुर्म नहीं है। लिंग परीक्षण करके इसलिए हत्या करवाना, कि लड़की आपके पेट में पल रही कानूनन जुर्म है। इससे डॉक्टर को या जो परिवार कन्या भ्रूण हत्या करवाता है, उसे सजा भी हो सकती है। भारत में लड़कियों की संख्या बहुत कम हो गयी है। 1,000 (एक हजार) लड़कों (0–6 साल की) पर 914 लड़कियाँ पूरे भारत में हैं। हरियाणा में 830, पंजाब में 846 चण्डीगढ़ 867, जम्मू काश्मीर 859 और उत्तर प्रदेश में 899 लड़कियाँ ही है 1,000 इन राज्यों का बहुत बुरा हाल है।

बल्कि असाम, त्रिपुरा, मिज़ोरम, बंगाल, उड़ीसा और बिहार जैसे पिछड़े राज्यों में एक हजार लड़कों पर लड़कियों की 900 से ऊपर संख्या है। चण्डीगढ़ व हरियाणा जैसे राज्यों व शहरों में भी लड़कियों की संख्या बहुत कम है। हमने अपने सर्वे में पाया कि सबसे बुरा कम (0.6 साल) लड़कों–लड़कियों का अनुपात क्योंकि वहाँ के लोग लड़कों को अपने सम्मान से जोड़ते हैं। फलतः हरियाणा में है यहाँ शादी के लिये लड़के बाहर की राज्यों जैसे बिहार और बंगाल से लड़कियों को खरीद कर ला रहे है।

लड़कियों की कमी के कारण लड़कों की शादी में देरी हो रही यानि हम कह सकते है, हरियाणा में हर साल 70 लड़कों की शादी नहीं हो पा रही है। पूरे भारत में 86 लड़के हर साल कुआँरे रह रहे है। यह देश की सबसे बड़ी समस्या है।

इस समस्या से निपटने के लिये सरकार ने लिंग परीक्षण पर रोक तो लगा दी है। परंतु चोरी–छिपे अभी यह कुछ अस्पतालों और प्राइवेट नर्सिंग होमों में खूब फल–फूल रहा है।

कई जगहों पर तो संकेत के द्वारा बताया जाता है, कि लड़की है, या लड़का। अगर लड़की हुई तो लक्ष्मी जी के फोटों की ओर संकेत करके बताया जाता है, या उन्हें नमस्कार करके कि लड़की है। कई अस्पताल या नर्सिंग होम में तो CCTV कैमरा भी नहीं लगा है। और न ही रजिस्टर में करवाने वाले का नाम पता दर्ज होता है। ताकि कोई सबूत ही न रहे।

इस समस्या से निपटने के लिये सभी के सहयोग की जरूरत है, ताकि देश में लड़के–लड़कियों का सही अनुपात बना रहे। नहीं तो कल को यह समस्या बहुत ही विकराल रूप धारण कर लेगी।

हमने अपने सर्वे में पाया कि समाजिक जागरूकता की कमी, अशिक्षा, दहेज प्रथा, बुढ़ापे की असुरक्षा, आर्थिक कारण व वंश चलाने की परम्परा या चाहत के कारण व मोक्ष की प्राप्ति भारतीय समाज में सदियों से यह परम्परा चली आ रही है। अभी इसमें कोई कमी नहीं आयी है। इन्हीं सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कारणों से ज्यादा लोग लड़कों की चाह रखते हैं और लड़कियों की अनिच्छा करते हैं। ❖

शिक्षा–विमर्श

सर्वभौमिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक

❑ डॉ. सरफ़राज़ अहमद

डा. सरफराज़ अहजमद, हलीम मुस्लिम पी.पी. कॉलेज, कानपुर में शिक्षा विभाग में प्राध्यापक हैं। तथा शिक्षा शास्त्र के मर्मज्ञ एवं विचारक हैं।

सम्पादक

शिक्षा के सन्दर्भ में अर्थवेद के एक मंत्र में बताया गया है – 'शं सरस्वती सह धीभरस्तु'। इसका भावार्थ यह है कि – 'शिक्षा' के द्वारा जीवन में विवेक का गुण जागृत होना चाहिए, जिसके द्वारा शिक्षार्थी स्वयं बुद्धि के द्वारा दुर्गुणों को छोड़े और सद्गुणों को अपनाए। यह भी कहा गया है कि – 'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात् विद्या विनय देती है या विद्या से सुशीलता प्राप्त होती है। इसके द्वारा ही श्रद्धा और मेधा प्राप्त होती है। प्राचीन समय से ही शिक्षा का लक्ष्य शुद्ध संस्कार और पवित्र धर्म की भावना जागृत करना रहा है। माना जाता रहा है कि शिक्षा वह बहुमूल्य निधि है, जो हमें स्थूल और सूक्ष्म विषयों का ज्ञान कराती है। ऐसे में यदि किसी राष्ट्र के नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने के भरपूर और समान अवसर प्राप्त होते हैं तो यक़ीनन वह राष्ट्र प्रगति की ओर उन्नमुख होता है। भारत में इसको प्रमुखता देते हुए शिक्षा को मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत रखा गया है और उसी परिप्रेक्ष्य में वर्तमान में 'सर्वभौमिक शिक्षा' के क्रियान्वयन की बात की जा रही है। सार्वभौमिक शिक्षा में 'सभी के लिए शिक्षा' की व्यवस्था का प्रत्यय अर्न्तनिहित है।

इंग्लैण्ड में जब प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण हुआ तो उनके पास शिक्षा का उद्देश्य था कि निश्चित आयुवर्ग के सभी बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना। 'सभी के लिए शिक्षा' हेतु 'सार्वभौमिक शिक्षा' शब्द प्रयोग किया जाता है। 'सार्वभौमिक शिक्षा' हेतु – 'लोकव्यापी शिक्षा' और सार्वजनिक शिक्षा शब्द का भी प्रयोग करते हैं, वहीं अंग्रेजी में Universal Education शब्द प्रयोग होता है। वर्तमान में इसके लिए 'सर्व सुलभ शिक्षा' शब्द प्रयोग होता है। जिसके अन्तर्गत – 'सर्व शिक्षा अभियान'–2001 को भारत सरकार ने प्रस्तुत किया हैं जहाँ 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा का लक्ष्य 10 वर्षों में प्राप्त करने की बात कही गयी है। इस दृष्टि से भारत में 'सार्वभौमिक शिक्षा' का अर्थ है –

- शत प्रतिशत सुविधा या सर्वभौमिक पहुंच – 6–14 आयु वर्ग के शत प्रतिशत बच्चों को कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा सुविधा सुलभ करना।
- शत प्रतिशत नामांकन या सार्वभौमिक नामांकन – 6 से 14 आयुवर्ग के शत प्रतिशत बच्चों का कक्षा–1 से कक्षा–8 तक में नामांकन कराना।
- शत प्रतिशत सफलता या सार्वभौमिक उपलब्धि – इन शत प्रतिशत बच्चों को विद्यालयों में रोके रखना, उन्हें बीच में विद्यालय छोड़कर न जाने देना।
- शत प्रतिशत सफलता या सार्वभौमिक उपलब्धि – इन शत प्रतिशत बच्चों को कक्षा 8 उत्तीर्ण कराना ।

भारत में 'सार्वभौमिक शिक्षा' की कठिनाईयाँ

वर्तमान में भारत में विभिन्न शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत 10 वर्षों के अन्तराल में निःशुल्क एवं अनिवार्य 'सार्वभौमिक शिक्षा' हेतु 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं, किन्तु अभी तक हम 'सार्वभौमिक शिक्षा' के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकें हैं। इसके विभिन्न कारण हैं –

आवश्यक संसाधन की कमी – सर्वप्रमुख कारण आवश्यक संसाधनों की अपर्याप्तता है। प्राथमिक शिक्षा में 'सार्वभौमिक शिक्षा' हेतु मानवीय एवं गैर मानवीय दोनों प्रकार के संसाधनों का अभाव है। भारत में प्राथमिक स्तर की शिक्षा हेतु न ही योग्य शिक्षक ही हैं और नहीं विद्यालय में आवश्यक संसाधन। जिसके कारण यहां 'सार्वभौमिक शिक्षा' के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कठिनाई हो रही है।

तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या– ज्यो–ज्यों हम लक्ष्य प्राप्ति की और तीव्रगति से कदम बढ़ा रहे हैं त्यो–त्यो जनसंख्या में इज़ाफ़ा उतनी ही तीव्रगति से हो रहा है। वर्तमान में 2011 की जनसंख्या के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,2108,54977 है, जिसमें 62,32,70,258 (51.47%) पुरूष एवं 58,75,84,719 (48.53%) महिलाएं हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या हेतु 'सार्वभौम शिक्षा' की व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन की समस्या – शिक्षा में अपव्यय से तात्पर्य कक्षा में किसी शिक्षार्थी का निरन्तर फेल होना

प्राध्यापक (शिक्षक–शिक्षा विभाग), हलीम मुस्लिम पी.जी. कॉलेज, कानपुर।

ISSN : 2394-3912

और अवरोधन से तात्पर्य किसी कारणवश शिक्षार्थी की शिक्षा बीच में ही रूक जाना है। यह दोनों समस्याएं भी भारत में 'सार्वभौमिक शिक्षा' के क्रियान्वयन में कठिनाई उत्पन्न कर रही हैं। भारत में 'सर्व शिक्षा अभियान' के तहत सभी के लिए निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था की गई है। अपव्यय और अवरोध की समस्या से शिक्षा में घाटा होता है और में हम

'सार्वभौमिक शिक्षा' के वास्तविक लक्ष्य से हम दूर हो जाते हैं।

बालिकाओं की शिक्षा में अवरोधन – भारत में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा अधिक अवरोधित होती है, इसके कई कारण हैं जैसे–अभिभावकों का पक्षपात रवैया, कम आयु में विवाह हो जाना, सुरक्षा की भावना और बालिका शिक्षा हेतु–नीति का अभाव। जिसके कारण भारत में अधिकांश बालिकाएं

सार्वभौमिक शिक्षा' में वंचित हो जाती हैं या फ़िर बीच में ही उनकी शिक्षा अवरोधित हो जाती है।

ग्रामीण जनता की गरीबी – वैसे तो भारत वर्ष में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया जा रहा है परन्तु यहां की जनता विशेषता गांव की अत्यन्त गरीब है। उनके बच्चे भी रोज़ी–रोटी कमाने में उनकी सहायता करते हैं। भारत में गरीब अभिभावक बालकों को अल्प आयु में ही खेती के कार्यों और मज़दूरी में लगा देते है। जिसके कारण 'सार्वभौमिक शिक्षा' को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

शैक्षिक प्रसार की धीमीगति – भारत में 'सार्वभौमिक शिक्षा' हेतु गिनी–चुनी नीतियां बनाई गयी, बनने के बाद उनके क्रियान्वन में समय लगा और क्रियान्वित हुई पूर्ण रूप से क्रियान्वित नहीं हो पाई, जिसकी एक प्रमुख वजह है – दोषपूर्ण प्रशासनिक नीतियां। यह ठीक है कि नीतियां 'सार्वभौमिक शिक्षा' हेतु एवं उसके प्रसार हेतु नीतियां बनाई गई परन्तु दोषपूर्ण प्रशासनिक नीतियों के कारण उनका सही प्रकार से प्रसार नहीं हो पाया। जिसके कारण 'सार्वभौमिक शिक्षा' को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

विद्यालयी सुविधाओं का आभाव – 'सार्वभौमिक शिक्षा' की प्रमुख कठिनाई यह भी है कि भारत में विद्यालय शैक्षिक सुविधायुक्त नहीं है। विद्यालय में सुविधा होना तो दूर की बात है, दूर–दराज़ इलाकों में तो विद्यालय ही नहीं हैं। जिन क्षेत्रों में विद्यालय हैं भी तो पहुंचना 'टेढ़ी खीर' के समान है। ऐसे में सार्वभौमिक की संकल्पना को साकार रूप देने में कठिनाई हो रही है।

पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता – शिक्षा के पाठ्यक्रम में अनुपयुक्तता के कारण भी इसके प्रसार एवं विस्तार में कठिनाई आ रही है। इसके लिए पाठ्यक्रम अधिक व्यवहारिक होना चाहिए। जिससे बालकों की शिक्षा के साथ–साथ भावी जीवन हेतु तैयार भी किया जाए। उन्हें उनकी योग्यता, क्षमता और रूचि में अनुरूप व्यवसाय के लिए भी तैयार किया जाए। उन्हें जीविका अर्जन हेतु भी ज्ञान दिया जाए।

अप्रशिक्षित शिक्षक – कहा जाता है कि शिक्षक ही देश का निर्माण करता है। ऐसे में शिक्षक का 'शिक्षित' एवं 'प्रशिक्षित' होना नितान्त आवश्यक है। शिक्षा में सार्वभौमीकरण हेतु शिक्षित एवं प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। जिसके कारण 'सार्वभौमिक शिक्षा' के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कठिनाई आ रही है।

सोंच में पिछड़ापन – लोगों द्वारा शिक्षा को अहमियत न दिये जाने का एक वजह उनके सोंच में पिछड़ापन है। धन से सम्पन्न लोगों का यह मानना है कि हम तो पूर्णतया सम्पन्न हैं और सारे कार्य नौकर करते हैं तो क्या जरूरत है शिक्षा की, वहीं गरीब का मानना है कि जब मजदूरी ही करना है तो क्या जरूरत है शिक्षा की, वहीं लड़कियों की शिक्षा के लिए मानना है कि जब चूल्हा चौका ही करना है तो क्या जरूरत है शिक्षा की। ये सोंच ही सार्वभौमिक शिक्षा को लोगों की पहुंच से दूर ले जाती है अर्थात् सोंच में पिछड़ापन के कारण भी 'सार्वभौमिक शिक्षा' के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कठिनाई आ रही है।

'सार्वभौमिक शिक्षा' में सुधार के लिए सुझाव

प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में संख्यात्मक विकास के किसी कार्यक्रम को तभी सफ़ल बनाया जा सकता है, जब कि उसके साथ गुणात्मक सुधार का कार्यक्रम भी लागू किया जाए। भारत में प्रारम्भिक शिक्षा का स्तर संसार के विकसित देशों, यथा–अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी और जापान आदि की तुलना में काफ़ी नीचा है। गुणात्मक सुधार के हेतु कार्यात्मक शिक्षा को प्रारम्भ किया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि बच्चों को आवश्यक उपकरणों के रख–रखाव और संचालन की जानकारी दी जाए, उनमें रचनात्मक अभिवृत्ति का विकास किया जाए तथा उन्हें अपने नागरिक कर्त्तव्यों के बोध के प्रति जागरूक किया जाए। इसके फलस्वरूप छात्रों में स्वयं सीखने की भावना जागृत होती है।

गुणात्मक सुधार लाने में बाधाएं – प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के क्षेत्र में अनेक बाधाएं हैं। हमारे पास इतने वित्तीय साधन नहीं हैं कि हम प्राथमिक शिक्षा में पर्याप्त सुधार कर सके। उपर्युक्त और पर्याप्त स्थान का भी अभाव है। प्रशिक्षित और योग्य शिक्षकों की कमी है और पर्याप्त शिक्षण उपकरण और पुस्तकें भी नहीं हैं। सामान्य रूप से विद्यालयों में जो सुविधाएं होनी चाहिए वे उपलब्ध नहीं हैं। इन विद्यालयों में समुचित पाठ्यक्रमेत्तर क्रियाओं में भी बल देने में हम असमर्थ रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए अलग स्कूलों की व्यवस्था नहीं है। प्रशासन और पर्यवेक्षण की व्यवस्था भी संतोषजनक नहीं है। शिक्षण नियोजन विधि उचित रूप में नहीं है।

गुणात्मक सुधार लाने के उपाय– 'अनिवार्य सार्वभौमिक निःशुल्क शिक्षा' में गुणात्मक सुधार लाने के हेतु विभिन्न उपाय किये जाने चाहिए। यहां कुछ प्रमुख उपायों का उल्लेख किया जा रहा है –

शैक्षिक अपव्यय एवं अवरोधन पर नियंत्रण – सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की एक महत्वपूर्ण समस्या अपव्यय एवं अवरोधन है। यह समस्या विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के बच्चे में अधिक है। यह प्रयास किया जाना चाहिए कि कक्षा–5 तक कार्यात्मक शिक्षा प्राप्त किये बिना किसी को भी विद्यालय छोड़ने न दिया जाए। शिक्षकों और अभिभावकों दोनों को मिलाकर इसका प्रयास किया जाना चाहिए। बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय अधिक होता है। अतएव बालिकाओं को अधिक शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए और उन्हें कार्यात्मक शिक्षा दी जानी चाहिए। अभिभावकों में भी बालिकाओं की शिक्षा के प्रति सचेतना, जागृत की जानी चाहिए।

अंशकालीन शिक्षा की व्यवस्था – कोठारी आयोग का यह सुझाव था कि प्रारम्भिक स्तर पर अंशकालीन कक्षाएं प्रारम्भ की जानी चाहिए। इन अंशकालीन कक्षाओं में बच्चे घरेलू कार्य करने के साथ ही शिक्षा के लिए समय निकाल लेंगे। आयोग ने यह भी सुझाव दिया था कि अंशकालीन कक्षाओं में कुल नामांकन के 20 प्रतिशत छात्र होने चाहिए। कक्षाओं में छात्रों की उपस्थिति उनकी इच्छा पर होनी चाहिए।

साक्षरता कक्षाओं का अयोजन – समाज में निरक्षरता की समाप्ति के हेतु साक्षरता कक्षाएं प्रारम्भ की जानी चाहिए। 11 और 14 वर्ष की आयु के बच्चे जिन्होंने किन्हीं कारणों से प्रारम्भिक शिक्षा पूरी नहीं की है किन्तु कार्यात्मक शिक्षा प्राप्त कर लिया है, उन बच्चों के लिए साक्षरता कक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। साक्षरता कक्षाओं की शिक्षा की अवधि कम से कम एक वर्ष होनी चाहिए। ये कक्षाएँ प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों द्वारा विद्यालय के समय के बाद चलाई जाएं और उन्हें विद्यालय भवन एवं उपकरण आदि उपयोग में लाने की सुविधा दी जाएं। बालिकाओं के हेतु इस तरह की कक्षाएँ सायंकाल में आयोजित की जाएं। इन साक्षरता कक्षाओं में शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों को अलग से मानदेय भी दिया जाये।

समुचित वित्तीय व्यवस्था – भारत में सकल राष्ट्रीय आय का 3 अथवा 4 प्रतिशत ही शिक्षा पर व्यय किया जाता है, जो उन्नत देशों की तुलना में बहुत कम है। शिक्षा को संविधान की समवर्ती सूची में स्थान दिया है परन्तु अभी भी राज्य सरकारें ही मुख्य रूप से 'सार्वभौमिक शिक्षा' के हेतु उत्तरदायी हैं। आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्रीय बजट का बड़ा भाग 'सार्वभौमिक शिक्षा' पर व्यय किया जाए।

प्रशासन एवं पर्यवेक्षण – प्रशासन एवं पर्यवेक्षण भी 'सार्वभौमिक शिक्षा' की एक बड़ी समस्या है। प्रारम्भिक शिक्षा संस्थाओं को प्रशासकीय आधार पर जो अनुदान प्रदान किया जाता है उसके क्रियान्वयन की नीतियों में बहुत खोट है। प्रारम्भिक शिक्षा पर कागज़ी लिखा–पढ़ी अधिक रहती है परन्तु काम कम होता है। पर्यवेक्षक भी कार्यालय के कार्यों में रत रहते हैं और विद्यालयों का निरीक्षण आवश्यकताओं को समझें और उसी के अनुरूप कार्य योजना बनाएँ। पर्यवेक्षक शिक्षण संस्थाओं का निरन्तर निरीक्षण करते रहें और शिक्षा के स्तर के उन्नयन का निरन्तर प्रयास करते रहें।

बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष दल – बालकों की तुलना में बालिकाओं की शिक्षा में अधिक अपव्यय होता है। जूनियर हाईस्कूल स्तर पर यह और भी अधिक बढ़ जाता है। बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार हेतु परम्परागत प्राचीन रूढ़िवादी विचारों को परिवर्तित करना होगा। उनके हेतु प्रत्येक गांव में अलग मिडिल स्कूल खोले जाएं और उनमें महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाए। सहशिक्षा को भी लोकप्रिय बनाना आवश्यक है। सभी स्तारों पर बालिकाओं की शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। साथ ही उन्हें प्राप्त करने के लिए पुस्तकें आदि दी जानी चाहिए। 11 से 14 वर्ष वर्ग की बालिकाओं के हेतु अंशकालीन शिक्षा की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। बालिकाओं के पाठ्यक्रम में नये विषयों का समावेश किया जाना चाहिए।

शिक्षक और सेवा दशाएँ – प्रारम्भिक शिक्षा के हेतु शिक्षक उसी क्षेत्र में नियुक्त किए जाने चाहिए। योग्य और प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए। शिक्षक और छात्र के अनुपात को कम किया जाना चाहिए और यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्राथमिक स्तर पर 25 छात्रों के लिए एक शिक्षक हों। शिक्षकों का वेतन भुगतान समय पर किया जाना चाहिए। उन्हें प्रोन्नति के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए और उनकी सेवा दशाओं में सुधार किया जाना चाहिए।

कार्यानुभव पर आधारित पाठ्यक्रम – सार्वभौमिक शिक्षा के हेतु प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए। शिक्षा को कार्यानुभव अथवा समाजोपयोगी उत्पादन कार्यों से जोड़ा जाना चाहिए और कार्यालय शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

विद्यालयों की व्यवस्था – ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय गाँव से एक किमी० का परिधि में और मिडिल तीन किमी० की परिधि में होने चाहिए। अभी भारत में लगभग 6लाख गाँव में प्राथमिक और मिडिल स्कूल खोलने की आवश्यकता है। इन स्कूलों में पाली–प्रथा लागू की जानी चाहिए। विद्यालयों में पानी पर शौचालयों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

ISSN : 2394-3912

भवन – वर्तमान समय में लगभग 49 प्रतिशत विद्यालय किराये के भवनों में चल रहे है और लगभग 13 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों के पास कोई भवन ही नहीं है, यह ठीक नहीं है। सार्वभौम शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु स्कूल भवनों की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। यद्यपि 'ऑपरेशन ब्लक बोर्ड' योजना के अन्तर्गत भवनों की व्यवस्था का बीणा उठाया गया है परन्तु अभी भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना है।

अभिभावकों को शिक्षा – सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ी बाधा अभिभावकों की निरक्षरता है। ये निरक्षर अभिभावक शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते। बालिकओं की शिक्षा के प्रति उनका दृष्टिकोण पुरातनवादी है। अतएव प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के द्वारा अभिभावकों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसी स्थिति होने पर ही अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजेंगे और हम सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

सार्वभौमिक शिक्षा के लिए शिक्षक की भूमिका

सार्वभौमिक शिक्षा का प्राथमिक स्तर में प्रचार–प्रसार हेतु शिक्षक निम्न प्रकार से अपनी भूमिका को सार्थक बना सकता है –

- स्वयं में जागरूकता बढ़ करके
- सपर्ण की भावना का विकास करके सामाजिक अन्तःक्रिया को बढ़ा करके
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बना करके
- शिक्षार्थियों और अभिभावकों को शिक्षा के लिए अभिप्रेरित करके
- शिक्षा की सार्थकता को सभी को बताएं
- 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सहयोग करें
- शिक्षा में जन्तन्त्रिक व्यवस्था करें
- शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन को रोकने में अपना योगदान दें
- शिक्षा में अभिप्रेरकीय और उपयुक्त वातावरण तैयार करें ❖

सामयिक टिप्पणी

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, समाज और खबरें

□ डा. अर्चना सेंगर सिंह

मीडिया खासतौर से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की खबरें भी बहुत लोगों को लगने लगा है, कि सास–बहु का सिरियल है। परंतु कभी–कभी तो संवेदनहीनता की हद ही हो जाती है। उदाहरण के तौर पर एक ताजी घटना के रूप में देश के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की पत्नी श्रीमती शुभ्रा मुखर्जी की मृत्यु से जुड़ी खबरों का है। श्रीमती मुखर्जी न सिर्फ देश की प्रथम महिला थी, अपने आप में भी उनका व्यक्तिव वशिष्ट था। वे रविन्द्र संगीत की साधिका थी, और ख्यात प्राप्त चित्रकार भी थी। पर इस दुखद घटना को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने विशेषकर अधिक देखें जाने वाले निजी समाचार चैनलों ने अपने प्रमुख समय में शामिल नहीं किया।

लगभग ये सभी चैनल अपनी खबरों में राधे माँ से जुड़ी चटखारें वाली खबरें या हुर्रियत कॉन्फ्रेंस के अलगावादी नेताओं के साक्षात्कार दिखाते रहे। कहा जाता है कि ग्लोब्लाइजेशन और बाजारीकरण दुनिया के विकास की नयी दिशायें देगें। क्या यही विकास की नयी दिशाये है जो अर्न्तराष्ट्रीय व बाजारीकरण दे रहा है?

सम्भवतः बाजार को यह भ्रम है, कि आज का समाज सकारात्मक राष्ट्रीय मुद्दों के प्रति संवेदनशील नहीं है। परंतु शायद यह सच नहीं है। यह बाजारू मानसिकता धीरे–धीरे लोगों के सरोकार को चटखारों तक ही सीमित कर देना चाहती है।

भारत की युवा पीढ़ी को इससे सर्तक रहना होगा और मीडिया को एहसास दिलाना होगा की देश की प्रथम महिला व सृजनशील व्यक्तियों की खबरें राधे माँ जैसे दिशाहीन लोगों से ज्यादा मायने रखती है, और वे राष्ट्र की वैचारिक चेतना को सही दिशा देने की कोशिश करें।

जानकारी

इक्कीसवीं सदी में अंतरजाल (इन्टरनेट) पर फैलता हिन्दी संसार

□ डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

तीसरी प्रविधिक क्रांति (1980 ई.) के बाद 'अंतरजाल' यानी 'इंटरनेट' सूचनाओं के आदान–प्रदान का सबसे सुलभ साधन बन चुका है। 'अंतरजाल' ने मानव जीवन से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ी है। 1.20 करोड़ आबादी वाले देश में हिन्दी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। देश की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी इसी भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्त करती है। टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तानाका के अनुसार विश्व में चीनी के बाद हिन्दी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है और अंग्रेजी तीसरे पायदान पर जा चुकी है। आज ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, गुयाना, मॉरिशस, सूरीनाम, फीजी, नीदरलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिदाद और टोबैकों जैसे देशों में हिन्दी बोलने वाले काफी तादाद में रहते हैं जो हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए काफी संतोषजनक बात है।

इसके साथ ही विकसित देशों पर भी हिन्दी अनुप्रयोग का जबरजस्त दबाव पड़ रहा है। इसका मूल कारण यह है कि हिन्दी आज विश्व बाजार की भाषा बन चुकी है। भारत में सर्वाधिक उपभोक्ता पाये जाते हैं और किसी भी बहुराष्ट्रीय कम्पनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक पहुँचना होगा और आम आदमी तक पहुँचने के लिए जनभाषा ही सबसे सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि आज 50 से अधिक देशों में 500 से अधिक केन्द्रों पर हिन्दी पढ़ाई जाती है। कई केन्द्रों पर स्नातकोत्तर स्तर पर

हिन्दी का अध्ययन–अध्यापन के साथ ही पी–एच.डी. करने की सुविधा उपलब्ध है। विश्व के लगभग 140 देशों तक हिन्दी किसी न किसी रूप में पहुँच चुकी है।

जब सन् 2000 ई. में हिन्दी का पहला वेबपोर्टल अस्तित्त्व में आया तभी से अंतरजाल पर हिन्दी ने अपनी छाप छोड़नी प्रारम्भ कर दी जो अब रफ्तार पकड़ चुकी और इसे रोकना भी अब नामुमकिन लग रहा है क्योंकि नयी पीढ़ी के साथ–साथ पुरानी पीढ़ी ने भी इसकी उपयोगिता समझ ली है। मुक्तिबोध और त्रिलोचन जैसे हिन्दी साहित्य महत्त्वपूर्ण कवि अपने जीवन काल में पूर्णरूपेण प्रकाशकों द्वारा उपेक्षित रहे, इनके जीवनकाल में इनकी रचनाएँ तक प्रकाशित न हो पायी। कहने का आशय सिर्फ यह है कि अंतरजाल ने हिन्दी को प्रकाशकों के चंगुल से मुक्त कराने का भी भरसक प्रयास किया है। 'अंतरजाल' पर हिन्दी का सफर रोमन लिपि से प्रारम्भ होता है और फान्ट जैसी समस्याओं से जूझते हुए धीरे–धीरे यह देवनागरी लिपि तक पहुँच जाता है। आज अंतरजाल पर हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित 50–60 ई–पत्रिकाएँ अपनी देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं जो प्रकाशकों का मान–मर्दन करती नजर आ रही हैं। संयुक्त अरब अमीरात में रहने वाली प्रवासी भारतीय साहित्य प्रेमी श्रीमती पूर्णिमा बर्मन 'अभिव्यक्ति' तथा 'अनुभूति' नामक ई–पत्रिका की सम्पादक हैं तथा सन् 1996 ई. से 'प्रतिबिम्ब' नामक नाट्य संस्था चला रही हैं। 'अभिव्यक्ति' हिन्दी की पहली ई–पत्रिका है जिसके आज 20,000 से भी अधिक पाठक हो चुके हैं। 'अभिव्यक्ति' के पश्चात् 'अनुभूति', 'रचनाकार', 'हिन्दी नेस्ट', 'कविताकोष', 'संवाद' आदि ई–पत्रिकाएँ अस्तित्व में आयी। इनके आतंक से घबड़ाकर हिन्दी की अनेक प्रकाशकों ने अपनी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के ई–संस्करण जारी किये जिसकी वजह से आज 'हंस', 'कथादेश', 'तद्‌भव', 'नया ज्ञानोदय' जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ अंतरजाल पर उपलब्ध हैं।

आजकल स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए ब्लाग एक महत्त्वपूर्ण साधन बन चुका है जो हर समय सुगमता से ब्लागर और पाठक दानों के लिए उपलब्ध है। आलोक कुमार हिन्दी के पहले ब्लागर हैं जिन्होंने हिन्दी का पहला ब्लाग 'नौ–दो–ग्यारह' बनाया और आज हिन्दी में ब्लागों की संख्या एक लाख के ऊपर पहुँच चुकी है जिनमें से 6000 अतिसक्रिय तथा 20,000 सक्रिय की श्रेणी में आते हैं। आलोक कुमार ने ही अंतरजाल पर पहली बार 'चिट्ठा' शब्द का इस्तेमाल किया जो अब ख्याति प्राप्त कर चुका है। आज सभी दैनिक समाचार पत्र अपने ई–संस्करण निकाल रह हैं जो पाठकों के लिए वरदान साबित हुए हैं क्योंकि कोई भी पाठक केवल एक या दो अखबार खरीद सकता है। परन्तु समाचार पत्र अंतरजाल पर उपलब्ध होन से वह सभी समाचार पत्रों को थोड़े खर्च में देख सकता है।

अतिथि सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ मोबाइल–09453476741, ईमेल– dpsingh777@gmail.com

ISSN : 2394-3912

अंतरजाल पर हिन्दी साहित्यिक सीमाओं को लांघकर अपना प्रसार कर रही है। अंतरजाल कहानी, नाटक, उपन्यास से आगे बढ़कर अनेक महापुरुषों की जीवनियाँ, चिकित्सा, विज्ञान के क्षेत्र में भी हिन्दी विश्व की अन्य भाषाओं से कदमताल कर रही है।

आज हमारे लिए आवश्यक वेबसाइटों के हिन्दी संस्करण उपलब्ध हैं। पूँजी बाजार नियामक भारतीय प्रतिभूति बोर्ड (S.E.B.I.), B.S.E., N.S.E., भारतीय जीवन बीमा निगम की साइटें हिन्दी में उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द (I.S.R.O.) की वेबसाइट भी हिन्दी में उपलब्ध है। भारतीय जीवन में गहरे तक पैठ चुके महत्वपूर्ण बैंक भारतीय स्टेट बैंक (S.B.I.), रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (R.B.I.) युनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया (U.B.I.), पंजाब नेशनल बैंक (P.N.B.), भारतीय लघु विकास उद्योग बैंक की साइटों के हिन्दी संस्करण उपलब्ध हैं। जुलाई 2009 ई. में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का यह निर्देश महत्त्वपूर्ण है कि हिन्दी में लिखे पत्रों का जवाब हिन्दी में दिया जाना चाहिए।

आज हिन्दी के 15 से भी अधिक सर्च इंजन उपलब्ध हैं जो किसी भी वेबसाइट का चंद मिनटों में हिन्दी अनुवाद करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। याहू, गूगल और फेसबुक भी हिन्दी में उपलब्ध हैं।

यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो अब कम्प्यूटर से निकलकर हिन्दी मोबाइल में न केवल पहुँच चुकी है बल्कि भारी संख्या में लोग इसे उपयोग भी कर रहें है। मोबाइल तक हिन्दी की पहुँच ने देश में देवनागरी लिपि के समक्ष खड़ी चुनौती को काफी हद तक मिटा दिया है। आज से 15 वर्ष पूर्व हम जब हिन्दी के भविष्य पर विचार करते थे तो अनेक तत्वान्वेषी यह कहते हुए पाये जाते थे कि हिन्दी का भविष्य तो उज्जवल है लेकिन हमारी लिपि पर बड़ा संकट मड़रा रहा है। चूंकि मोबाइल प्रयोक्ता अपने संदेश भेजने के लिए रोमन लिपि पर निर्भर रहते थे। आज यह समस्या पूरी तरह हल हो चुकी है। यदि आपके भीतर थोड़ी भी इच्छाशक्ति है और अपनी मातृभाषा के लिए जरा भी सम्मान है तो कोई भी भावना हिन्दी में व्यक्त कर सकते हैं। चाहे वह कम्प्यूटर पर हो या मोबाइल पर।

हिन्दी के लिए उत्साहजनक बात अंतरजाल पर आयी ट्वीटरों की बाढ़ भी है जिस पर हिन्दी का जबरदस्त प्रयोग हो रहा है। दुनिया में रहने और हिन्दी जानने वाले इसका जबरदस्त उपयोग कर रहे हैं। आज जितने भी प्रतिष्ठित प्रोफेसर, डॉक्टर, राजनेता, अभिनेता, सामाजिक कार्यकर्ता, खिलाड़ी आदि हैं, सभी ट्यूटर का प्रयोग कर रहे हैं और इनको मिलने वाली प्रतिक्रिया बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों का ही अनुसरण मध्यम और छोटे तबके के लोग करते हैं। इनका हिन्दी अनुप्रयोग निश्चय ही हिन्दी के लिए नई संभावनाएँ पैदा करेगा।

हाल ही में हिन्दी अनुप्रयोग के दो और नये स्थान देखने को मिले हैं जिन पर आज से पाँच साल पहले सोचा भी नहीं जा सकता था। डी.टी.एच. और क्रिकेट के स्कोर बोर्ड हमारे सामने हिन्दी को नये रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। डी.टी.एच. ने किसी भी चौनल के हिन्दी में अनुवाद की सुविधा दे रखी है। हम सभी जानते है कि भारत की अधिकतर आबादी हिन्दी में ही अपने विचारों का आदान–प्रदान करती है। भले ही हमें अंग्रेजी आती हो लेकिन हिन्दी या स्थानीय भाषाओं को हम जिस सहज भाव से आत्मसात करते हैं उस भाव से अंग्रेजी को नहीं, चूंकि हिन्दी या हमारी स्थानीय भाषाएँ हमारे अन्तःकरण में विद्यमान हैं। पहले क्रिकेट की हिन्दी में कमेन्ट्री निश्चित समय तक ही होती थी लेकिन अब पूरा खेल हम हिन्दी में सहजता से सुन सकते हैं। इसके साथ ही डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिकल और एनीमल प्लानेट जैसे चैनल हिन्दी के दर्शकों का ज्ञानवर्धन कर रहे हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि आने वाला समय हिन्दी का है। बस कुछ पुराने, दकियानूसी और अदूरदर्शी सोच वाले ही हिन्दी के प्रति नकारात्मक भाव व्यक्त कर रहे हैं। आज के समय में न तो हिन्दी की सामग्री की कमी है और न ही पाठकों की। हाँ, विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में अभी और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है जिससे इसका पूर्ण लाभ आम आदमी को मिल सके। हिन्दी का एक मजबूत पक्ष यह भी है कि यह बाजार की भाषा बन चुकी है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी उपयोगिता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। हिन्दी राष्ट्र संघ की भाषा बनने के लिए अपने कदम बना चुकी है, बस आवश्यकता मजबूत इच्छाशक्ति की है। ❖

जानकारी

इन्टरनेट के युग में सूचना प्रौद्योगिकी और हिन्दी

❑ अनीता

आधुनिक संचार माध्यमों टेलीविजन, रेडियो, फेसबुक, ट्वीटर, ब्लाग, मोबाइल आदि ने हिन्दी को पहले से अधिक लोकप्रिय और जनसुलभ भाषा बना दिया है। आज हिन्दी का महत्व इस बात से भी समझा जा सकता है कि दुनिया में 50 से अधिक देशों में हिन्दी का अध्यापन हो रहा है। इसका मूल कारण यह है कि आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में यह बाजार की भाषा बन चुकी है और बाजार में लम्बे समय तक वही रूक सकता है जो जनमानस के अनुकूल हो। देश में युवा कामगारों को देखते हुए सूचना प्रौद्योगिकी और विज्ञान के क्षेत्र में भी हिन्दी में कदम बढ़ा दिये हैं। इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से विदेश में रहने वाले प्रवासी भारतीय आज भी अपनी संस्कृति से जुड़े हुए हैं।

इंटरनेट ने आज पूरी दुनिया को एक सूत्र में पिरो दिया है। प्रारम्भिक दिनों में इंटरनेट पर अंग्रेजी पूरी तरह से हावी रही लेकिन जल्द ही अनेक देशों में अपनी मातृभाषा और जनभाषा के महत्व को समझते हुए अंग्रेजी के विकल्प के रूप में अपनी–अपनी भाषाएँ (जापानी, चीनी, जर्मन आदि) विकसित कर ली। ठीक यही चीज हिन्दी के साथ भी लागू हुई। हिन्दी के पोर्टल अब व्यवसायिक तौर पर अत्मनिर्भर हो रहे हैं। कई सारी आईटी कंपनियाँ हिन्दी का समर्थन कर रहीं हैं। वर्तमान समय में यूनिकोड के आने से हिन्दी में काम करना बेहद आसान हो गया है। यूनिकोड इनकोडिंग सिस्टम ने हिन्दी को अंग्रेजी के समान ही प्रबल और सक्षम बना दिया है।

आज प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, फिल्मों या सीरियल में ही नहीं अपितु डिस्कवरी, जिओग्राफिकल, हिस्ट्री, कार्टून आदि सभी चैनलों पर हिन्दी अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। ये सभी तथ्य हिन्दी के विस्तार में और हिन्दी को राष्ट्रसंघ की भाषा के रूप में शीघ्र की मान्यता मिलने की ओर इशारा कर रहे हैं। हमारे पास आज हिन्दी को अपनाने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। देश की 70 फीसदी से अधिक आबादी हिन्दी समझती और बोलती है। यदि उन तक पहुँचना है तो विश्व की बड़ी से बड़ी कम्पनियों को भारतीय बाजार में आकर हिन्दी को वरीयता देना ही होगी। साफ्टवेयर क्षेत्र की बड़ी कम्पनियाँ अब नए बाजार की तालाश में हैं क्योंकि अंग्रेजी का बाजार ठहराव बिंदु के निकट है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को नये बाजार की तालाश में हिन्दुस्तान की ओर आना ही पड़ेगा। चूंकि विकासशील और तीसरी दुनिया के देशों को भारी मात्रा में कम्प्यूटर एवं अन्य अत्याधुनिक उपकरणों की आवश्यकता है।

इंटरनेट पर हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ाने में ब्लागिंग का योगदान भी उल्लेखनीय है। आज हिन्दी के बहुत से अखबार, पत्र–पत्रिकाएँ अपने अंकों के साथ इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। 'दैनिक जागरण', 'राष्ट्रीय सहारा' 'हंस', 'कथादेश', 'तद्भव', 'नया ज्ञानोदय', जैसी बहुत सी पत्र–पत्रिकाएँ इन्टरनेट पर आसानी से उपलब्ध हैं। आज इन्टरनेट पर हिन्दी आम से लेकर खास भी को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। इंटरनेट पर हिन्दी की लोकप्रियता में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। देश के प्रमुख संचार संस्थान भी छात्रों को हिन्दी से जुड़ाव के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। इंटरनेट ने हिन्दी में नई प्रतिभाओं को सामने लाने में काफी मदद की है और इस पर हिन्दी का संसार तेजी से फैल रहा है क्योंकि हिन्दी में व्यक्ति अपने विचारों को स्पष्ट और सहज रूप से रख पाता है। इंटरनेट पर हिन्दी अनुप्रयोग के कई उदाहरण आपको देखने के लिए मिल जायेंगे। जैसे – भारत में कई सरकारी वेबसाइटें हिन्दी में हैं जिसके माध्यम से नई पीढ़ी को मातृ भाषा से जुड़ने में प्रोत्साहन मिला है। हमें अक्सर देखने को मिलता है कि हर उम्र के लोग हिन्दी भाषा का प्रयोग यूनिकोड रूप में कर रहे हैं, जिससे हिन्दी का क्षेत्र निरन्तर फैल रहा है।

कम्प्यूटर पर हिन्दी का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ हो रहा है। हिन्दी के पत्र–पत्रिकाओं की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है। आज अनेक हिन्दी साफ्टवेयर बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं, जैसे सी–डैक का इज्म ऑफिस, लीप ऑफिस, अक्षर फार विंडोज, सुविंडोज आदि। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से मशीनी अनुवाद

छात्रा, हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ–226025
ई–मेल– anitabbau@gmail.com

करना बेहद सरल हो गया है। हिन्दी में वेब पेज प्रयोग करने के लिए प्लग इन पैकेज तैयार किया गया है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति या संस्था अपने वेब पेज आसानी से हिन्दी में प्रकाशित कर सकती है। सूचना प्रौद्योगिकी में हिन्दी भाषा का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कई विदेशी कम्पनियों जैसे माइक्रोसाफ्ट, याहू, गूगल आदि भी अपनी वेबसाइटों पर हिन्दी को स्थान दे रही हैं। वर्तमान समय में हिन्दी के अनेक शब्दकोश भी उपलब्ध हैं।

इन्टरनेट के युग में हिन्दी प्रौद्योगिकी के साथ मिलकर विश्वव्यापी बन गयी है। यह दक्षिण पूर्व एशिया, चीन, कोरिया, अफ्रीका से वहाँ के चैनलों पर लगातार प्रसारित हो रही है और उन्हें देखने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। वहाँ पर रहने वाले प्रवासी भारतीय अपने मनपसंद टी.वी. सीरियल और फिल्में आसानी से अपनी मातृभाषा में देखने में सक्षम हैं। कई देशों में तो प्रवासी भारतीय अपने बच्चों को हिन्दी में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के माध्यम से हिन्दी सिखाते हैं। आज एफ.एम. रेडिया इंटरनेट और मोबाइल पर उपलब्ध होने के कारण भी हिन्दी को बढ़ावा मिल रहा है। यह देश–विदेश सभी जगह आसानी से उपलब्ध होने के कारण भी हिन्दी सुनने वालों की संख्या में दिन–प्रतिदिन बढ़ोत्तरी हो रही है।

आज मल्टीनेशनल कंपनियाँ हिन्दी के प्रचार–प्रसार में लगी हुयी हैं क्योंकि अगर भारतीय बाजार में वो अपना उत्पाद बेचना चाहते हैं तो उन्हें हिन्दी को अपनाना ही पड़ेगा। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में हिन्दी बोली और समझी जाती है। आज अधिकतर समाचार चैनल हिन्दी में प्रसारित हो रहें हैं। बॉलीवुड पर भी हिन्दी का दबदबा कामय है और बाहर की भी जितनी फिल्में है वो अनुवादित होकर हिन्दी में आ रही हैं क्योंकि भारतीय हिन्दी भाषा के प्रति ही आकर्षित होते हैं। इस कारण से भी हिन्दी के प्रचार को बढ़ावा मिलता है।

हमारे संविधान में हिन्दी को राजभाषा होने का गौरव प्राप्त है और यह हमारी राष्ट्रभाषा भी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आज भी देश के अधिकतर छात्र हिन्दी माध्यम से ही शिक्षा प्राप्त करते हैं। वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों को विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध कराई जायें। आज गरीब या मध्यम वर्ग के बहुत से बच्चे ऐसे हैं जो अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाते। ऐसा नहीं है कि उनमें ज्ञान की कमी है या सोचने की क्षमता नहीं है लेकिन वे गैर सरकारी स्कूल की ऊँची फीस, मँगे कपड़े आदि की व्यवस्था नहीं कर सकते। यदि वे विज्ञान को अपनी भाषा में सीखें तो उनकी प्रतिभा का और अधिक विकास होगा। विज्ञान और चिकित्सा किसी देश के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिन्दी में भारतीय जनमानस विज्ञान को आसानी से समझ सकता है। विदेशों में विज्ञान को उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाता है। इसलिए आज जरूरत इस बात की है कि हिन्दुस्तान में विज्ञान की शिक्षा हिन्दी में दी जाय। आज जनसंचार और ब्लाग के माध्यम से भी विज्ञान को हिन्दी में लिखकर प्रचारित किया जा रहा है। अनेक विज्ञान की पत्रिकाएँ जैसे आविष्कार, विज्ञान प्रगति आदि हिन्दी में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ प्रतिष्ठित विज्ञान की पुस्तकें अनुवादित होकर हिन्दी में आयी हैं। अनुवाद में भी गूगल ट्रांसलेटर ने अपनी छाप छोड़ी है जिससे अनेक वेबसाइटों पर अंग्रेजी में उपलब्ध विज्ञान की सामग्री हिन्दी अपनी लोकप्रिय भाषा में पढ़ा जा सकता है। लेकिन इसके लिए छात्रों को कम्प्यूटर की जानकारी होना आवश्कय है। इतने प्रयासों के बावजूद अभी विज्ञान की सामग्री को हिन्दी में उपलब्ध कराने के लिए और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। बल्कि यही कहा जाय कि आवश्यकता इस बात की है कि जनसाधारण के लिए उनकी भाषा में भी किताबें लिखीं जायें ताकि विज्ञान सभी के लिए लोकप्रिय बन सके।

अन्ततः कहा जा सकता है कि आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में हिन्दी हमारे सम्मुख नये रूप में आ रही है और दूर–दराज में बसे प्रवासी भारतीयों को अपनी संस्कृति से जोड़ रही है। इंटरनेट एक्सप्लोरर, नेटस्केप, मोजिला, गूगम क्रोम, ओपेरा जैसे इंटरनेट ब्राउजर हिन्दी को आगे बढ़ा रहें हैं। ब्लागिंग और मोबाइल ने हिन्दी को और अधिक समृद्ध किया है। यही हाल रहा तो आने वाला समय निश्चय ही हिन्दी का होगा और हमारी राष्ट्रभाषा को विश्वभाषा बनने में अधिक समय नहीं लेगा। सूचना प्रौद्योगिकी की तरह विज्ञान में हिन्दी अपनी सर्वोच्चता कायम करेगी। ❖

If you have a problem,
Work for its solution.

If you have the solution,
Work for its validity.

If you have validated it,
Work for its application.

If you have applied it,
Work for Nature & Humanity.

❒ Rana Pratap Singh

बच्चों का पन्ना

कभी न खत्म होने वाली कहानी

प्रो. एस. सिवादास
(हिन्दी भावानुवाद राणा प्रताप सिंह)

सभी बच्चे यह सुनकर घबरा गये कि जयंत को सांप ने काट लिया है। पर मास्टर जी यह जानकर निश्चित थे कि वह एक पनिहा सांप था। जयंत के घर से सब लोग उस तालाब पर गये जहां जयंत अपने भाई के साथ देर तक धींगा–मस्ती करता रहा था। पढ़ें यह कतानी इस अंक में।

संपादक– जब सांप ने काट खाया

अगली सुबह भोर में ही सभी बच्चे जमा हो गये। बाहर खेतों और जंगलों में घूमने का मजा जो लेना था। परन्तु जयंत नहीं आ पाया। सब लोग जयंत के लिए रूके थे। जयंत को हुआ क्या? सभी को यहीं चिंता सता रही थी। जब जयंत का छोटा भाई दौड़ता हुआ आया तो उसके बारे में जानने के लिए सब उत्सुक हो उठे।

"क्या बात है बेटे? जयंत क्यों नहीं आया?"

मास्टर जी ने उत्सुकता से पूछा।

"जयंत को सांप ने काट लिया हैं" छोटा सा लड़का हांफता हुआ बोला।

"क्या? सांप! सभी लोग धक से रह गये।

"हां एक पनिहा सांप! पानी बाला।" वह बहुत घबराया हुआ था।

"हां हां हां–हां।" मास्टर जी हंसते हुए बोल पड़े– "वह पनिहा सांप था यह तो अच्छा रहा। वह विषहीन होता है, इसलिए खतरे की कोई बात नहीं है।" मास्टर जी अब निश्चित हो गये थे।

"लेकिन फिर भी वह सांप तो है ही न। और उसने जयंत को काटा भी है हे भगवान! वह खतरनाक भी तो हो सकता हैं" रानी डर के मारे बेहाल थी।

"इतना घबराओं मत! मैं तुम्हें बता रहा हूं न कि वह सांप खतरनाक नहीं होता। जो भी हो हम जयंत के घर चलते हैं। उसी से बातचीत करके पूरे मामले की जानकारी हासिल होगी।" मास्टर जी ने प्रस्ताव रखा।

यह बात सबको जंच गयी। सब लोग जयंत के घर की ओर चल पड़े।

अप्पू तेजी से भागता हुआ सबसे पहले उसके घर पहुंचा। उसके पीछे ही बाकी लोग भी पहुंच गये। वहां घर के बार कोई भी नहीं मिला। वे लोग भी चले गये। वहां जयंत एक कम्बल में लिपटा चारपाई पर पड़ा था। बहुत कमजोर और पिलपिला सा लगा रहा था। उन लोगों को देखकर उसकी आंखों से आंसू लुढ़क पड़े। वहीं पास में बैठी उसकी मां भी रो रही थी। मास्टर जी ने जयंत की मां से उसका हाल–चाल पूछा। जयंत की मां ने बताया कि मीटिंग से वापस आने के बाद जयंत के साथ क्या बीती। वापस आने के तुरंत बाद जयंत अपने भाई के साथ तालाब पर नहाने चला गया। वे दोनों पानी के भीतर कूदते–फांदते एक ..... से धींगा–मस्ती करते रहे। दोनों भाई पानी के अन्दर काफी देर तक धमा–चौकड़ी मचाते रहे। तभी एक पनिहा सांप ने जयंत को काट लिया। खूब जोर से काटा था। जयंत डर और दर्द से चिल्ला पड़ा था। उसकी चीख सुनकर वह दौड़ी हुई वहां गयी ओर उससे चीखने का कारण पूछा। जयंत के शरीर पर एक लहुलुहान घाव था, जिससे खून बह रहा था। मां ने उसे साफ करके उस पर हल्दी का ताजा लेप लगाया। उसके बाद जयंत को बिना कुछ खिलाये ही बिस्तर पर लिटा दिया था।

"बिना खिलाये क्यों? मास्टर जी ने पूछा।

"हमारें गांव में ऐसी ही प्रथा है। सांप के काटे आदमी को रात को खाना नहीं दिया जाता। इससे शरीर में जहर नहीं फैलता है। मां ने कारण बताया।

"पनिहा सांप विषहीन होता है। इसके काटने से विष नहीं चढ़ता। डरने की कोई बात नहीं है। वह आदमी को नुकसान नहीं पहुंचाता।" मास्टर जी ने जयंत और उसकी मां को सांत्वना दी। फिर जयंत से बोले", मुझे घाव तो दिखाओ। किधर काटा है सांप ने? पांव की पिण्डली में?"

"नहीं सर"

"जंघे में है।" मां ने बताया।

"जरा देंखूं तो" मास्टर जी कम्बल हटाते हुए बोले।

मास्टर जी ने जंघिया के बाहर जंघे का निरीक्षण किया। उन्हें कोई घाव नहीं दिखा।

ISSN : 2394-3912

"क्या यह जंघिए के भीतर है? पानी में तैरते तुमने जंघिया नहीं पहना था क्या?"

जयंत शरमा गया। उसके छोटे भाई सोनू ने राज खोला–"पानी में घुसते समय तो जयंत ने जांघिया पहन रखा था। पर पानी के भीतर वह ढीला होकर निकल गया। जयंत खेलने में इतना मस्त था कि उसे पता ही नहीं चला। दरअसल हमें तब पता चला जब सांप ने काट खाया।

"हमें सांप के काटे का निशान देखना है जयंत। जांघिया तो निकालो।" मास्टर जी ने जयंत को कहा। सबके सामने जांघिया उतारने में उसे लाज आ रही थी। इसलिए वह तैयार नहीं हुआ। मास्टर जी ने मुस्कराते हुए छेड़ दिया–"तुम्हें इतनी शरम लग रही तो अपनी आंखे बन्द कर लो। फिर तुम्हें अपना नंगापन नहीं दिखेगा।" यह कहते हुए मास्टर जी ने उसका जांघिया उतार दिया।

"देखो यहां ऊपर सांप के काटे का निशान है। बिल्कुल साफ।" घाव तो छोटा ही था पर सांप के दांतों के निशान स्पष्ट थे।

"देखा यह कितना छोटा है। ऐसा इसलिए क्योंकि पनिहा साप के दांत छोटे होते है। मास्टर जी ने वह निशान सभी को दिखाया। सब बच्चे आश्चर्य से जयंत के घाव में दांतों के निशान देखने लगे।

"ओ बेटे! मैं भरोसे से कह सकता हूं कि तुम बिना कच्छे के तालाब में बहुत देर तक खेलते रहे। वरना पनिहा सांप तुम्हारे जंघे में इतना ऊपर नहीं काट पाता।" मास्टर जी ने शरारत से कहा। सभी मसखरी में हंस पड़े।

"और क्या हुआ होता अगर उसने थोड़ा और ऊपर काट लिया होता? पेशाब करने में भी दर्द होने लगता"। उन्होंने फिर से छेड़ दिया। मास्टर जी के मजाक पर इस बार जयंत भी हस पड़ा। मां ने भी राहत महसूस की।

"खैर तुम्हें इस तरह पड़े रहने की जरूरत नहीं है। उठ जाओ।" मास्टर जी ने जयंत को कहा। फिर वे उसकी मां की तरफ मुड़कर पूछने लगे। "क्या इसने नाश्ता किया है?

"नहीं।" मां ने बताया। "इसने रात से कुछ भी नहीं खाया।"

"बेचारा! तब तो भूखा होगा। इसे खाना तो दे दीजिए। परेशान मत होए। यह ठीक–ठाक है। मैं इसकी गारण्टी लेता हूं कि इसे कुछ नहीं होगा। एक बात और आप लोगों को इस तरह डरना नहीं चाहिए।" मास्टर जी ने मां को दिलासा दी।

जयंत ने जी भरकर नाश्ता किया। उसके दोस्त भी नाश्ते पर टूट पड़े और देखते ही देखते मां का बनाया हुआ सारा नाश्ता साफ हो गया। अब सांप काटे का उसका सारा डर काफूर हो गया था और वह पूरे जोश में आ गया था। वह अपने मित्रों से पानी के सांप वाली उस महान दिलेरी भरी घटना का बखान करने लगा। अपने दोस्तों के बीच जयंत इस कारनामें का नायक बन गया।

"अच्छा! क्यों न हम चलकर जयंत के पानी वाले सांप को खुद ही देखें?" मास्टर जी ने प्रस्ताव रखा।

"चलते हैं–चलते हैं।" हर कोई उत्साहित हो गया, नन्हीं रानी के सिवा। रानी ने धीरे से पूछा 'सर, क्या सांप हमें काट लेगा?"

"नहीं बेटे!" वे बोले। "बहादुर बनो। वह यूं ही नहीं काट लेता। हमारे साथ–साथ रहना। "मास्टर जी ने उसे तसल्ली दी और सभी को लेकर चल पड़े।

सब लोग तालाब तक पहुँचे। तालाब काफी गहरा था। इतना कि एक भरा–पूरा आदमी पूरी तरह डूब जाए। उसके चारों ओर किनारे के उथले पानी में तरह–तरह के जंगली पौधे उगे हुए थे। तालाब के किनारों पर पेड़ भी बहुत थे। इसलिए तालाब का पानी बहुत ठण्डा था। तालाब के भीतर बहुत से कमल और कुमुदिनी खिले हुए थे। इसमें फूलों वाली दूसरी प्रजातियाँ भी थी जिनसे पूरा तालाब बूटेदार लग रहा था। कमल के पुराने फूलों के नीचे गूदेदार हिस्सा होता है जिससे उसका 'बीज' कहते हैं। बच्चों ने इसे तोड़कर मजे से खाया, "गूदेदार, लेईदार और स्वादिष्ट। हा! हा! हा! खाने में मजेदार!" अप्पू खुद से ही बोल पड़ा। मानो उसे बहुत मजा आया हो। "पानी के भीतर यह क्या है? रोएँ की तरह।" मिनी ने पानी के भीतर उगी हुई किसी चीज की ओर इशारा करके पूछा।

"ओह! वह कँटीली काई हैं!" किसी ने बताया।

"यह रोएँदार काई?" अप्पू ने टोका।

"हम इसे कँटीली इसलिए कहते हैं, क्योंकि इसमें बहुत छोटी पतली नुकीली पत्तियाँ होती हैं। इनका तना भी पतला, कमजोर होता हैं, जो पानी में लहराते हुए रोएँ जैसा दिखता हैं। यह पौधें पानी के ठण्डा होने की गवाही देते हैं। ये इस तालाब के बहुत से प्राणियों के आहार भी हैं, जो इन्हें खाकर मस्त रहते हैं। हाँ। ये पानी के पौधे प्रकाश संश्लेषण से अपना भोजन भी खुद ही बनाते हैं।" मास्टर जी ने बताया।

"ये मछलियों के आरामगाह भी हैं।" देविका बोली। वह इन जलीय पौधों का बिछौना बनाकर आराम करती छोटी–छोटी मछलियों को बड़े ध्यान से निहार रही थी।

शहर की होने के कारण मिनी तालाब के आश्चर्यजनक पौधों से अपरिचित थी। उसने कंटीली काई की कुछ टहनियों को हाथ में लेकर उनको ध्यान से देखा। "बहुत दिलचस्प और ताज्जुब भरे हैं ये पौधे।" सोचा उसने।

"देखो! देखो! पानी में इतने सारे टैडपोल, "मोहम्मद का ध्यान उधर था।

"सच्ची बात। मछलियों से भी ज्यादा। पानी तो टैडपोलों से भरा हुआ है" टीपू ने पानी में नजर दौड़ाई।

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस तालाब में बहुत से पनिहा सांप हों। वे इन टैडपोलों की दावत उड़ाने आये होंगे। उन्हें टैडपोल बहुत पसन्द हैं।" मास्टर जी ने उन्हें इस तालाब में पनिहा

सांपों के होने का एक कारण बताया।

"मगर अभी पनिहा सांप महोदय चले किधर गये हैं" दीपू सांप देखने के लिए उतावला था।

"यहीं कहीं पास ही होंगे। ध्यान से देखो। शोर मत मचाओ। एकदम शांत रहो। और जो जहां खड़ा है, चुप–चाप वहीं खड़ा रहे। अब तुम तालाब में ध्यान से देखो। पनिहा सांप लगातार बहुत देर तक पानी के भीतर डूबा नहीं रहता। थोड़ी देर बाद वह पानी के ऊपर अपना सिर जरूर निकालता है। "मास्टर जी ने निर्देश दिया।

"क्यों? इसीलिए कि उसको सांस लेने के लिए ताजी हवा चाहिए?" कोई पूछ बैठा।

"हां! वे पानी के भीतर इस या उस पौधे पर टिके रहते हैं। और बीच–बीच में मौका पाकर टैडपोलों को भी उकारते जाते हैं। मास्टर जी ने कहा।

"वाकई! बड़े उस्ताद हैं।" रानी बोली।

टैडपोल मेंढको के नवजात शिशु होते है। जो अण्डों से निकलते हैं। इनकी संरचना कुछ–कुछ मछलियों जैसी होती है। और ये पानी के भीतर तैरते रहते हैं। बाद में उनके आकार और स्वरूप में बहुत बदलाव आ जाता है और वे फुदकने वाले नन्हें मेंटक शिशु बन जाते हैं।

"हाँ! वे तो छोटे मेढकों को भी साफ कर जाते हैं।"

"शाबाश...! शांत! वहाँ एक पनिहा साँप ऊपर आ रहा हैं।" किसी ने आस–पास एक साँप को उतरता हुआ देख लिया था।

"ओह! यह तो बहुत तगड़ा बन्दा है।" दीपू बोला।

"ओह! मुझे तो डर लग रहा है।" रानी सिहर कर बोली।

"तुम डर क्यों रही हो? वह बेचारा तो खुद ही तुमसे डरा हुआ है।"

"वह देखो। वह तालाब की फुसफसी दीवार पर रेंग रहा है।"

'क्यों न हम उसे डण्डे से मार दें?" मैं डण्डा ले ऑऊ सर!" मुहम्मद ने पूछा।

"अगर तुम डण्डा ले आओगे तो मैं वादा करता हूँ कि पहले डण्डे का स्वाद तुम्हें ही चखने को मिलेगा। क्या तुम यह चाहते हो?" मास्टर जी ने मुहम्मद से कहा।

"लेकिन साँप नजर आने पर उसे मारना तो चाहिए न....।" मुहम्मद कहते–कहते बीच में ही रूक गया। क्योंकि तब तक साँप एक बिल में जा घुसा था।

"चलो अब और आसान हो गया।" अनु बोली। "हम उसे उसके बिल में ही पीट–पीट कर मार डालेंगें।"

"अच्छा यह बताओ तुममें से कितने लोग साँप को मारना चाहते हो?" मास्टर जी ने टोका।

"अनु, बिनु, राजू, रेजी और मुहम्मद ने अपने हाथ ऊपर उठाए।

"लेकिन तुम लोग एक पनिहे–साँप को मारना क्यों चाहते हो?" मास्टर जी को हैरानी हो रही थी।

"क्योंकि वे काट लेते हैं।" मुहम्मद गुस्से में आ गया।

"अरे तुम इतना गुस्सा मत करो मुहम्मद। तुमने जो कहा वह सच है। वे काट लेते हैं। लेकिन क्या वह पनिहा साँप काटने के लिए जयंत के घर गया था? बोलो तो।" मास्टर जी उसका गुस्सा ताड़ गये।

"नहीं।"

"अगर हम तालाब में घुसेगें तो वह हमें भी काट लेगा।" मुहम्मद का गुस्सा अब भी बरकरार था।"

"वाकई? अगर ऐसा है तो वह हम लोगों पर टूट क्यों नहीं पड़ा। हम सब तो तालाब के भीतर आ गये हैं।" मास्टर जी बोले।

"वह तो..... "मुहम्मद को जवाब नहीं सूझा।

"इसका मतलब यह हुआ कि पनिहा साँप किसी को यूँ ही नहीं काट लेता। सिर्फ पानी में घुस जाने से ही नहीं। अगर तुम पानी में डुबकी लगाओ तब भी वह काटेगा नहीं। हाँ अगर तुम धींगा–मस्ती करोगे और बार–बार डुबकी लगाओगे तो पानी गंदला हो जायेगा और यह सब उसके लिए भारी उपद्रव होगा। और अगर इस दौरान तुम्हारा पाँव उसकी पूँछ या शरीर पर पड़ गया तो वह छोड़ेगे नहीं। डूबकी लगाते वक्त तुम्हें तो इसका पता नहीं चल पायेगा। पर वह बेचारा इस हलचल से घबरा जायेगा।" मास्टर जी बोले।

"गलती से इसने जयंत को एक स्वादिष्ट निवाला समझ लिया था।" अप्पू ने चटपटे अन्दाज से कहा।

"हो सकता है, इसने ऐसा ही सोचा हो। या हो सकता हैं वह भयभीत हो गया हो। सामान्यतः पनिहा साँप आदमी को तभी काटते हैं, जब वे बहुत चिढ़ जाते हैं।"

"क्या मैंने उस पर पाँव रख दिया था।" जयंत ने जुगुप्सा से कहा।

"अच्छा! तो तुम्हें यह विचार बुरा लगा। यह बेचारा जीव तुम्हारी ठोकर तो खाले, पर अपने बचाव में तुम्हें काटे भी नहीं।" मास्टर जी बोले।

"मैंने तो इसे छुआ भी नहीं।" जयंत अपनी बात पर अड़ा रहा।

"मैं तो अब भी डरा हुआ हूँ।" अप्पू ने जयंत का साथ दिया।

"ठहरो! ठहरो!" मास्टर जी बोले। "हम इस बहस को आज ही समाप्त कर देंगे। मुहम्मद! क्या तुम जाकर एक लम्बा डण्डा ले आओगे?" मुहम्मद डण्डा लेने दौड़ पड़ा।

"और जयंत तुम एक ताजी हरी झाड़ूदार डण्डी ले आओ।" जयंत भाग कर एक नारियल के पेड़ तक गया और नारियल के पत्तों के एक बीच वाले सिरे को छीलकर ले आया।

"और अब हमें कुछ रस्सियाँ भी चाहिए।" मास्टर जी ने अप्पू को अपने घर से रस्सियाँ लाने को भेजा।

'पारसमणि' बाल पत्रिका से साभार ❖

ISSN : 2394-3912

सुझाव

शौचालयः साझी दुनिया–साझे गढ्ढे

❐ राणा प्रताप सिंह

गाँवो में भी शौचालयों के प्रति लोगो का रूझान बढ़ रहा है। घर के साथ शौचालय का बनना और अच्छे शौचालय का बनना और उसका नियमित प्रयाग होना, शिक्षा तथा समृद्धि के प्रतीकों से जुड़ा हुआ है। अधिक शिक्षित परिवार और गाँव के लिहाज से समृद्ध परिवार घरों में अच्छे और साफ सुथरे शौचालय बनाने और बरतने लगे हैं। कम शिक्षित और गरीब परिवार इसकी जरूरत भी कम समझतें है, और उनके पास शौचालयों में लगाने के लिए पैसा भी नही है। सरकारी सहयोग अधूरा है, सामान निम्न कोटि के है, और आवंटित धन का एक बड़ा हिस्सा रिश्वत और भ्रष्टाचार का भोजन बन जाता है। ऐसे में कुछ नये प्रयोग किए जाने की जरूरत है।

1. पढ़े–लिखें और नौकरी–पेशा शहरी स्वच्छ जीवन पद्धतियों के अनुभव पाये लोग, रिटायरमेन्ट के बाद गाँवों में बसे और लोगो की समस्याओं पर सामूहिक मंथन करें। कुछ सहयोग भी करें और लोगों के साथ अपना और उनका आपस में माथा जोड़े। बहू–बेटियों की शिकायत करने, उनके उपर खीझतें रहने और उनके लिए पैसे जोड़तें रहने से सुख नही मिलेगा। उन्हें उनकी जिंदगी उनकी समझ के साथ जीने दे। अपनी जिंदगी अपने हिसाब से जिएँ। ऐसे लोगो के लिए कुछ करने का आनन्द ले, जिनसे आप को कोई अपेक्षा नही। और जिनको आपसे कोई अपेक्षा नहीं।
2. शौचालयों पर शोध की बहुत जरूरत है। मनुष्य का मल–मूत्र भी पशुओं के मल–मूत्र जैसा ही होता है, और भविष्य में उससे खाद और ऊर्जा बनाए जाने की अपार सम्भावनाएँ है। गॉवों में शहरों की तरह सीवर डाले जाने की बात सोचना तो बहुत दूर की कौड़ी है, परन्तु बड़े साइज के साझे सेनिटरी गढ्ढो के साथ कई परिवारों के शौचालयों को जोड़ दिया जाय तो कई लाभ मिलेगे। मसलनः–
   1) अलग–अलग गढ्ढे बनाने की जगह एक बड़ा गढ्ढा बनाने से लागत कम आयेगी।
   2) साझी सुविधा होने से लोग जो गढ्ढा भरने के डर से शौचालयों में न जाकर बाहर जाते है, वे होड़ करेंगे कि वैश्यालायों में नहीं गये तो दूसरे लोग उसे भर देगें।
   3) साझे गढ्ढो से बनने वाली गैस से कम से कम रौशनी बनाने या मशीनों को चलाने का काम हो सकता है।
   4) सहकार की प्रवृति जन्म लेगी, जो अभावों से पार पाने का सबसे प्रभावी तरीका है।
   5) भविष्य में सीवर पर आधारित ग्रामीण शौचालयों के निर्माण के लिए व्यवहारिक अनुभव प्राप्त होगे।

प्रयोगों से ही ज्ञान बढ़ता है। अनुभव और ज्ञान बाँटने से बेहतर दुनिया बनती है। आइए कुछ नया सोचे, कुछ नया करें। जो चल रहा है, वह तो चल ही रहा है, उसमें हमारे होने या न होने का अधिक फर्क नहीं पड़ेगा। ❖

खबरों की खबर

किसान और जमीन

❐ राणा प्रताप सिंह

नये भूमि अधिग्रहण विधेयक पर देश में तगड़ी राजनिति हुई। केन्द्र सरकार ने पहले इसे इज्जत और इकबाल का प्रश्न बनाया फिर विरोध के वजन के बढ़तें जाने से सरकार झुकने लगी। इस विधेयक से उद्योग और विकास के पक्ष मे माहौल बनाने की सत्ता पक्ष ने कोशिश की, तो विपक्ष लम्बी टूटन और बिखराव के बाद थोड़े समय के लिए एक जुट दिखा और एक जुटता से बटोरी गयी ताकत ने असर डाला। बड़ी संख्या में किसान संगठन और उनके प्रतिनिधि दिल्ली में एकत्र हुए।

'कहार' के पाठक इस विधेयक के बारे में, सुझाए गये संशोधनों के बारे में ओर सत्ता के बदलते रूख के बारे में अखबारों में पढ़ चुके होगें और टेलीविजन मे देख चुकें होगें। इसलिए इन पर बात करना महत्व नहीं रखता।

'कहार' के कुछ ऐसे पाठक भी होगे, जो जानते ही नही होगें कि पुराना भूमि अधिग्रहण बिल क्या था, और नया अध्यादेश क्या लाया जा रहा। क्या संशोधन सुझाया गया? वे खेत, खेत की मेड़, फसल का नफा नुकसान, लेखपाल, प्रधान, तहसील और कचहरी के बाहर की दुनिया के बारे में जानते ही नहीं है उनको अध्यादेश की बातें कैसे बताऐगें आप।

पर जो बात सबके लिए मौजू है, वह है, विकास का यह माडल। वह माडल जिसमें विकास सिर्फ उद्योगों से आता है और

मौसम का मिजाज बदल देता है। हवा में विषैली गैसें देता है, और खाने–पीने में भी बीमारियाँ पैदा करने वाले जहरीले रसायन भर देता है। भारत के अधिकांश किसानों के पास जमीन बहुत कम है। एक हेक्टेयर से भी कम। पर वह खेती, पशुपालन और अकुशल या अर्द्धकुशल श्रमिक के काम के अलावा कुछ जानते ही नही। उसकी जमीन बिक गयी तो वह क्या काम करके अपनी गृहस्थी चलाएगा ? इसका कोई रोड मैप नहीं बनता। कौशल विकास यदि सही मायने है तक इस तबके को लाभ दे पाये तो अच्छा है, परन्तु दूसरी सरकारी योजनाओं का हश्र देखते हुए इस पर विश्वास करने का मन नहीं करता।

किसी भी पेशे पर प्रहार करने से पहले सरकारों को उससे प्रभावित होने वाले लोगो के लिए एक रोड मैप बना लेना चाहिए, और उस रोड मैप की सफलता में आने वाली रूकावटों के मद्दे नजर वैकल्पिक योजनाएँ बना कर रखना चाहिए।

विकास के तमाम माडलो ने किसानों को और गाँवों को हाशिए पर ला दिया है। यूँ ही इतनी बड़ी आबादी को हाशिए पर नहीं डाला जा सकता और किसान तो अन्नदाता भी है, श्रम शक्ति भी और वोट दाता भी। उसकी ऐसी अनदेखी उसी की चुनी हुई सरकारें करें यह तो जुल्म की इंतिहा है। ❖

आमंत्रण

कहार ग्रामीण लाइब्रेरी श्रृंखला, ग्रामीण शोध एवं नवाचार केन्द्र, ग्रामीण शिक्षा, नवाचार एवं कौशल विकास विद्यालयों का ज्ञान विज्ञान, संस्कृति एवं विकास अभियान – 2015 से 2025

- अपने गाँव, मोहल्ले, कस्बे में कहार ग्रामीण लाइब्रेरी चलाने के लिए सम्पादकीय पते पर हमें पत्र लिखें या ई–मेल लिखें। हम 25 पुस्तकों का पहला सेट आपको आपके पते पर रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेज देगे।
- पुस्तकें प्राप्त करने पर स्थानीय पुरूष, महिला, युवा एवं किशोर लड़के, लड़कियों एवं बच्चों को, बुजर्ग लोगों को, हर वर्ग, जाति, उम्र और विचार के लोगों को पुस्तकें पढ़ने को दें और उन्हें लाइब्रेरी सदस्य बनाएं। ऐसे सदस्यों की संख्या लगातार बढ़ती रहे।
- पुस्तकों पर एवं गाँवों के आर्थिक सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक विकास पर कृषि, स्वच्छता, उद्योग, सेहत, पानी और पंचायत आदि विषयों पर लाइब्रेरी में कभी–कभी गोष्ठियां आयोजित करें हमसे सम्पर्क करने पर हम ऐसी गोष्ठियों के आयोजन में आपका सहयोग करेंगे।
- सफल लाइब्रेरी चलाने वाले सबसे अधिक संख्या में लोगों को पठन–पाठन से जोड़ने और सफल गोष्ठियां आयोजित करने वाली सर्वश्रेष्ठ पाँच लाइब्रेरियों को अभियान के वार्षिक सम्मेलन में पाँच हजार रूपये का प्रोत्साहन सहयोग दिया जायेगा जिसे वे अपने सदस्यों की सहमति से लाइब्रेरी के विकास के लिए अपनी इच्छा से खर्च कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त पाँच अन्य लाइब्रेरी के संचालकों को उनकी सहभागिता और जरूरत के हिसाब से रूपये 300/– प्रतिमाह वर्ष भर तक देने के लिए चुना जायेगा। यह प्रोत्साहन राशि जरूरतमंद संचालक चाहे तो, अपनी जरूरत के हिसाब से निजी जरूरत में भी खर्च कर सकता है।

अन्य योजनाएँ

- ग्रामीण शोध एवं नवाचार केन्द्रों की स्थापना, विकास एवं संयोजन।
- ग्रामीण शिक्षा नवाचार एवं कौशल विकास विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन।
- हमारी कोशिश आपको आपस में जोड़कर, नवाचार और नई चेतना की मदद से आपके गाँव, कस्बे के समावेशी और बहुआयामी अर्थात आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आत्मिक विकास को एक उचित माहौल देने की है, जिससे देश के गाँवों का टिकाऊ और सर्वांगीण विकास हो सके। हमारा विश्वास है, कि यह संभव है। सही नेतृत्व और सही दिशा प्राप्त करने की देर है। सबसे जरूरी है, एक उद्देश्य और निश्चित दिशा तय करके हमारा आपस में जुड़ते जाना। संवेदना, सहयोग, सरोकार, संवेग, सहकार, सम्मान और समावेश का शंखनाद ही हमारे सपनों को पंख और गति देगा। हम इस सहभागिता के लिए आपको खुले मन से आमंत्रित करते हैं।

ISSN : 2394-3912

सुझाव

किसानों की कसक और बदलता मौसम

❐ डा. अर्चना सेंगर सिंह

किसानो की व्यथा का हाल जानने के लिये चलिये हम सब मिलकर सोचे की कैसे इन्हें इस हालत से बाहर निकाला जाय। बेमौसम बरसात ने किसानो की कमर तोड़ दिया और उनकी सारी फसलें बरबाद हो गयी, जिसके चलते किसान आत्महत्या जैसे बड़े कदम उठाने पर मजबूर हो रहे हैं। इस बेमौसम बरसात की वजह से 85 हैक्टेयर रबी की फसल बर्बाद हुई है।

पिछले 17 सालों में 23 लाख किसान आत्महत्या कर चुके है। मौसम में बदलाव के कारण क्या है? क्यों इतनी तेजी से मौसम में अचानक ही बदलाव हो रहे है? क्या इसका कारण हम खुद तो नहीं है? जिस रफ्तार से हमारे जंगल, पेड़–पौधे कट रहे है, विकास के लिये जगह–जगह फैक्ट्रियाँ लगाई जा रही हैं, उनके कारण नदी–नालों से लेकर हवा तक का वातावरण प्रदूषित हो रहा है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण सारे विश्व का मौसम व वातावरण बदल रहा है।

घर–घर में एयरकन्डीशनर और गाड़ियों से इन्सान को सुख–सुविधायें तो मिल रही है, पर हमारे प्राकृतिक स्त्रोत साधन व वातावरण नष्ट हो रहे हैं।

पिछले सौ सालों में धरती का तापमान 15.5 से लेकर 16.2°C तक बढ़ी है। जिसके कारण प्राकृतिक आपदा तीव्र गति से बढ़ रही है।

वर्षा को फसल के लिये अमृत माना जाता है। परन्तु बेमौसम वर्षा, आँधी तूफान और ओले काल का रूप धारण करके आते है और विषय का काम करके गया।

हमारे यूनियन मिनिस्टर राधा मोहन सिंह ने पार्लियामेन्ट में जो आकड़े दिये है, उनके अनुसार इस वर्षा के कारण 27 लाख हैक्टेयर उत्तर प्रदेश में, 7.5 लाख हैक्टेयर महाराष्ट्र, में, 14.5 लाख हैक्टेयर राजस्थान, में, तथा 50,000 लाख हैक्टेयर बंगाल और 6,000 हैक्टेयर फसलें पंजाब में नष्ट हुई हैं।

इससे किसान ही नहीं आम आदमी पर भी मँहगाई की मार पड़ेगी।

पहले तो फसले नष्ट होने के कारण सिर्फ दक्षिण भारतीय किसानों की मरने की संख्या ज्यादा होती थी। परन्तु अब सारे भारत में किसानों मे आत्महत्या की तदाद बढ़ रही है।

हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश में फसल नष्ट होने के कारण किसानों की मरने की संख्या बढ़ी है। भारत एक कृषि समाज देश है, जहाँ पर 80 फीसदी किसान कर्ज लेकर खेती करते कि इस बार खेती अच्छी हुई सारे कर्ज उतर जायेगे और आमदनी भी अच्छी होगी। परन्तु जब फसल ही नष्ट हो जाये तो उनके सारे सपने टूट जाते है। क्योंकि उनके पास खेती के अलावा आमदनी का और कोई जरिया नहीं होता है।

जिस कारण उन्हें आत्महत्या जैसे कदम उठाना पड़ता है। हाँलाकि सरकार मुआवजा तो देती है, परन्तु मुआवजा की रकम इतनी कम होती है, वह भी समय पर न मिलने के कारण किसान हतास तथा दुखी हो जाते है।

किसानों में आत्महत्या रोकने व उनको अच्छी खेती के लिये प्रोत्साहित करने के कुछ उपायः

1. **जैविक खेतीः–** अपने घर से निकलने वाले व्यर्थ सब्जियों का छिलका, राख, सड़े–गले पत्ते, गोबर का खाद–कूड़ा करकट आदि को खाद के रूप में परिवर्तित करना जैविक खाद कहलाता है। इसकों प्रयोग में लाना और लोगों को कम लागत में खेती करने के लिये प्रोत्साहित करना जैसे कुँओं को फिर से पुर्नःजीवित करना। खड्डों, तालाब आदि के पानी को प्रयोग में लाना।
2. **कारपोरेटिव खेती करनाः–** यानि कई लोगों या कई समुदाय के लोगों को एक साथ मिलकर खेती करना जिससे खेती के फिर ज्यादा जमीन मिले और ज्यादा उपज हो। सब लोग मिल बाँट कर खेती के उपज का प्रयोग करें तो नुकसान की भरपाई आसानी से हो सकती है।
3. **खेती का बीमा होः–** बाकी चीजों के जैसे खेती का भी बीमा होना चाहिये। जैसे हैल्थ इन्शयोरेन्स, गाड़ी का इन्शयोरेन्स, घर का इन्शयोरेन्स लोग करातें है, वैसे ही खेती का बीमा सभी किसानो का होना चाहिये, ताकि प्राकृतिक आपदा के समय राहत मिल सके।
4. किसानो के खेत में जो मजदूर वर्ग काम करता है, उनकों भी उचित मुआवजा देने के लिये फण्ड बनाना चाहिये। 1951 से खेतिहर मजदूरों की संख्या 19 से बढ़कर 2011 में 30 प्रतिशत हो गयी है क्योंकि उनके पास तो खेती होती नहीं है। वे तो दूसरे खेतिहर किसानों के खेत में काम करके अपनी रोजी–रोटी कमाते है।
5. औरतों को भी खेती से सम्बन्धित जानकारियाँ देना या उनकों खेत–खलिहान से सम्बन्धित मसलो पर जानकारियाँ देना, उससे जुड़ी बाते बताना ताकि वे भी जरूरत पड़ने पर खेती सम्भाल सके। 2001 में जहाँ 37 प्रतिशत महिलाये

खेती से जुड़ी थी वही उनकी तादाद घटकर 2011 में 20 प्रतिशत हो गई है।

6. महिला मजदूर को भी पुरूष मजदूर के बराबर मजदूरी देना चाहिये। वे भी उतना ही घन्टा काम करती है और उतना ही काम करती है। परन्तु उनकों पुरूष मजदूरों से आधी मजदूरी दी जाती है।

7. खेती के लिये सरकार को कम लागत में बीज व सिंचाई से सम्बन्धित चीजे उपलब्ध कराना हालांकि सरकार जलवायु परिवर्तन को देखते सरकार फसलो को बचाने की योजना और इस पर शोध कार्य का योजना बना रही है पर अभी इसमें बहुत समय लगेगा। परन्तु ज्यादातर सरकारी नीतियो का फायदा भी धनी किसान ही उठातें है। गरीब किसानों को तो नीतियों के बारे में पता भी नहीं होता है, पर मुझे लगता है कि महिलायें मानसिक रूप से हमारे पुरूष जाति से ज्यादा शक्तिशाली है।

हमें महिलाओं के प्रति दोहरी मानसिकता के रवैया को बदलना होगा, तभी समाज आगे बढ़ेगा।

डॉ. अर्चना सेंगर सिंह, युवा समाजशास्त्री है, और फिलहाल न्यूजर्सी अमेरिका में रहती है। ❖

बच्चों की कविता

सूरज की छुपम छुपाई, देखों कैसी सर्दी आई

❐ डॉ अर्चना सेंगर

सर्दी आई, पड़ी रजाई,
आग जली तो, गर्मी आई।

सूरज के भी भाव बढ़ गये,
उनकों भी अब निंदिया आई।

सूरज ने भी ओढ़ लिया,
भूरे बादल की गरम रजाई।

सोचे कौन ठण्ड में जाये,
पृथ्वी पर बढ़े कपकपाई।

कुछ लोगों ने आग जला ली,
कुछ ने तानी बड़ी रजाई।

बच्चों का मन कुल बुल करता,
छुपम–छुपा, खोज छुपाई।

जोड़े का सूरज भी अच्छा,
गर्मी का सूरज भी अच्छा।

सूरज बिना न जीवन चलता,
सूरज की तो मौज है, भाई।

अनजानी सी खनकार

❐ शुभम चन्द्रा
परास्नातक, व्यवहारिक जन्तु विज्ञान विभाग, बी.बी.ए.यु.

एक तस्वीर है, जिन्दगी
इंसान की खुद की बनाई हुई,
खुद की तकदीर है जिन्दगी।
अगर न समझो तो इसे,
पैरों में जबरदस्त बांधी गई,
एक जंजीर है जिन्दगी।
मगर जानने की कोशिश कर
करीब से
तो एक जंजीर नहीं
पैरों में बज रही पायल की छनकार है, जिन्दगी।
एक कहार है, जिन्दगी,
इसमें कभी सावन आता है, तो कभी,
पतझड़ आता है,
कभी बहार आती है
कभी हेमन्त आता है।
बस हर मौसम में जीना सीख ले इंसान
तो फिर देखो
कुछ भी न मांगने पर
बहुत कुछ दे जाने वाली अनजानी सी खनकार है जिन्दगी

ISSN : 2394-3912

Environment

Role of Green advertising for Sustainable Development

❒ Ankit Dixit

Introduction

Development cannot be imagined even without the existence of resources. These resources has optimum role in supporting the life on the earth. The productive capacity of these resources defines the range of development. These may be land, soil, water, air, environment, and other constituent which sustains the life in the world. Since its inception, Mankind uses these resources to make progress and advancement in life. The indiscrimination use of these resources poses the challenges of environmental management before the world. Now it is forcing mankind to have a human attitude towards environment and our earth to save this planet. Thus, there erupts a need to think more than the only concept of Development. Presently the concept of sustainable development is growing momentum with a view to secure the resources for the future generation.The sustainable development ensures that the activities concerns with the mankind comfort would not endanger the resources potential of future generation.

Though today, in the world of globalization we are facing millions of environment related issues like global warming, greenhouse effect, ozone depletion, endangered species, extinct plant and animal species, overuse of resources, water conservation, energy conservation and many more. When we do the in-depth study of these issues we found that these all are interrelated and interdepended. The core issue among these is the conservation of forest which is on one hand has the large dependence from the industrial sector and on the other hand forest is the main stream of balanced ecological system. Forest has the medicinal value, Ayurveda value, cultural value, scientific value. A forest is the places where tree cover ranges from 5% to as high as 100%.Today, India has less than two percent of the world population. The growing population, urbanization and rapid industrialization in India increases pressure on limited land. The forest lands are encroached by the development projects, population, as well as by rivers. The forest cover declined sharply over the first three decades after independence.The actual forests cover discovered by Remote Sensing Satellite has been found in only 12 percent while the requirement prescribed by National Forest Policy (1951) and National Commission on Agriculture (1976) was stipulated as 33 percent.Deforestation expedites the pace of the process of soil erosion, landslides, danger of flooding, and scarcity of water. The flood-prone land area of India has grown very rapidly after 1971. This is evident from the above fact that forest conservation needs reconsidering our policies,innovative ideas and adopting the strategy of sustainable development which can deter the increasing trend of deforestation.

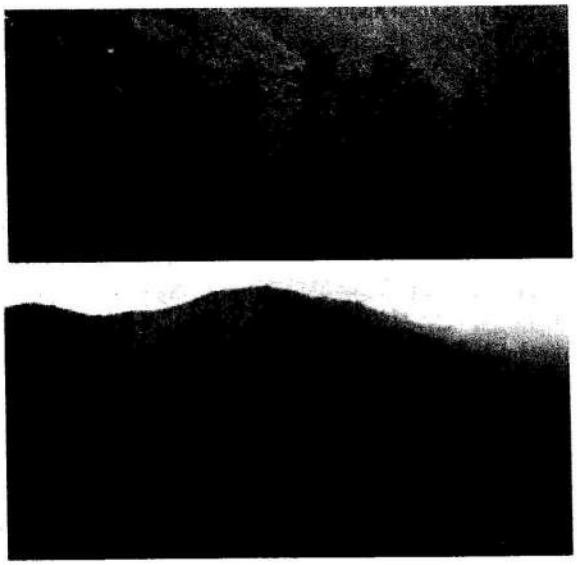

To deal with the issue of environment management, Government of India has come up with various policies, concept, and different strategies from time to time since pre independence era. With the time, the concerns for the conservation of environment aggravate and gradually many NGOs, companies, corporate sector involve in promoting the ecofriendly things, services and ideas. Advertising business was also not lag behind. It has come up with innovative ideas and strategy to promote ecofriendly products, their packaging, and protect the environment through eco-friendly means.

Green advertising is also seen as paperless advertising i.e. the advertising through the digital media. It is also seen as promoting the product and services which is eco-friendly and contribute in sustainable development. Thus, this is the scope and effectiveness of the Green advertising in protecting our forest and environment as well as its role in sustainable development for conserving our earth for our future generation which is also our moral responsibility to pass on best possible recourse for the upcoming children of our race. ❖

Research Scholar, Department of Mass Communication, BBAU Lucknow

Information

Bacteria within Our Body Matters

❒ Shovit Ranjan

A human body is collection of approximately 10 trillion cells which are themselves the products of 23,000 genes. However, these numbers radically underestimate the truth. In every nook and corner of the human body, especially in the gut, dwells the MICROBIOME- 100 trillion bacteria of several hundred species bearing 3 million non-human genes. These bugs are neither parasites nor passengers. They are, rather, fully paid-up members of a community of which the human "host" is a single member. Human microbiome consists of 100 trillion bacteria with 3 million non-human genes. Approximately 3 pounds of microbes occupy the human gut. Surprisingly 60% of the stool dry matter consists of microbes. The microbiome does many jobs in exchange for the raw materials and shelter it's host provides like more than 10% of the people's daily calories are derived from microbial genes(by breaking down of plant carbohydrates that human enzymes are unable to break down). Mother's milk contains carbohydrates called glycans which human enzymes cannot digest, but bacterial ones can. The microbiome also makes vitamins, notably B2, B12 and folic acid. This shows how closely host and microbiome have co-evolved over the years.

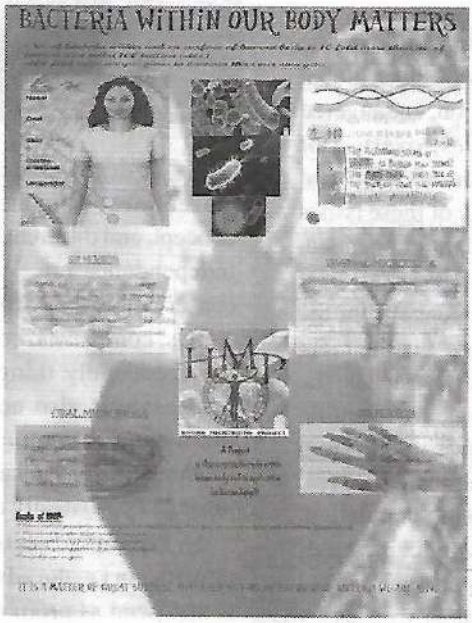

The latest research shows that the physiologies of the host and microbes are linked in ways, which make the idea of a human super organism. These links are most visible when they go wrong. A disrupted microbiome has been associated with a lengthening list of problems: obesity and its opposite, malnutrition, diabetes (both type-1 and type-2), atherosclerosis and heart disease, multiple sclerosis, asthma and eczema, liver disease, numerous diseases of the intestines including bowel cancer and autism. In some cases, it looks as if bugs are making molecules that helps to regulate the activities of human cells. If these signals go wrong, disease is the consequence. This suggests a whole new avenue for treatment!! If an upset microbiome causes illness, settling it down might affect a cure. For example, Probiotics: a mixture of about half a dozen bacterial species in yogurt, curd and milk helps to cure diseases such as irritable bowel syndrome.

In a study, it has been found that bacterium Clostridium difficile causes a life threatening distension/ enlargement of intestine. Recent experiments have shown that this disease can be eliminated by introducing, as an enema, the faeces of a healthy individual that is by stool transplant. So, transplantation of a microbiome is much easier than the transplantation of full organs.

The variable human microbiome is the set of genes present in a given habitat in a smaller subset of humans. This variation could result from a combination of factors such as host genotype, host physiological status (including the properties of the innate and adaptive immune systems), host pathobiology (including disease status), host lifestyle (including diet), host environment (at home and/or work) and the presence of transient populations of micro-organisms that cannot persistently colonize a habitat. Human being acts as ecosystem that contain many collaborating and competing species of microorganisms. The microorganisms that live inside and on humans is called the microbiota. The microbiota outnumbers the human somatic and germ cells by an order of 10 to 1. Joshua Lederberg coined the term microbiome. He described the microbiome as the ecological community of commensal, symbiotic and pathogenic microorganisms that share our body space. If humans are thought of as a composite of microbial and human cells, the human genetic landscape as an aggregate of the genes in the human genome and the microbiome, and human metabolic features as a blend of human and microbial traits, then the picture that emerges is one of a human 'supraorganism'.

Centre for Life Science Sciences, Central University of Jharkhand, Ranchi-835205
Corresponding author e-mail: shovitranjan@gmail.com
Phone:+91-9939199155

Host and Microbiome have linked physiologies. These links are most visible when they go wrong. A disturbed balance of the microbiota in the human host is a causative of many problems as discussed above. So, in order to find the solution for these problems, the extensive work on the Human Genome Project led way to the Human Microbiome project (HMP), resulting in an interest developed in the other genome of the microbes dwelling in and on the human body.

To coordinate these efforts relating the microbiome to human health, the NIH Common fund launched the HMP as a community resource program. The HMP was launched in 2008 as a 5 year project which had a budget of $115million. It is an interdisciplinary effort consisting of multiple projects. The human microbiome project was launched in 2008. In initial study, 15-18 body sites were sampled from 300 adults (involving 15 male sites and 18 female sites). More than 12000 samples were collected. 4.6 trillion base pairs of unique metagenomic sequences were generated. Novel organisms were found in this study. This study was conducted in 2 clinical centers, 4 sequencing centers using computational tools keeping in mind the biological ethics. More than 15 projects undertaken by the Human microbiome consortium linked the microbiome to disease. Various gastrointestinal diseases like obesity, Crohn's disease, ulcerative colitis, etc. were found to be associated with a disrupted microbiome. Skin diseases like psoriasis, acne and atopic dermatitis and urogenital diseases like bacterial vaginosis were also detected.

The goals of the HMP were to understand the range of human genetic and physiological diversity, to explore the relationship between disease and changes in the human microbiome, to study the ethical, legal, and social implications of human microbiome research and also to develop a reference set of microbial genome sequences and to perform preliminary characterization of the human microbiome. The HMP aims to answer a few important questions like how stable and resilient is an individual microbiota throughout one day and during his/ her lifespan? How similar are the microbiomes between members of a family or members of a community or across communities? Do all humans have an identifiable CORE MICROBIOME? What affects the genetic diversity of the microbiome? These questions are still left unanswered and the work is going on to reveal the truth behind it.

In order to achieve this, small-subunit (16S) ribosomal RNA gene-sequence-based surveys of bacterial communities that reside on or in the human body, including on the skin and in the mouth, oesophagus, stomach, colon and vagina were performed. In addition to this, metabolic reconstructions of the gut (faecal) microbiomes of healthy adults were also performed, which showed significant enrichment for genes involved in several metabolic pathways: the metabolism of xenobiotics (that is, foreign substances), glycans and amino acids; the production of methane; and the biosynthesis of vitamins and isoprenoids through the 2-methyl d- erythritol 4-phosphate pathway 1.

For this study, a total of 4788 specimen were studied- 113 females sampled at 118 body sites and 129 males sampled at 115 body sites. Samples included: 9 samples from the oral cavity and the oropharynx, 4 samples from the skin, 1 self-collected sample from the stool and 3 samples from the vagina. The samples were subject to 16S rRNA analyses and 454 pyrosequencing. Around 81-99% of the estimated genera were encountered in the samples. Through this study it was understood that the metagenomic carriage of metabolic pathways was stable among individuals despite variations in the community structure. It was also observed that the oral and stool samples were highly diverse in terms of community constitution, whereas the vaginal sites were relatively simple in composition of microbes. Carriage of microbial taxa varies while metabolic pathways remain stable within a healthy population. Conversely, most metabolic pathways are evenly distributed and prevalent across both individuals and body habitats. Thus, with the help of this study, it was concluded that the different sites were dominated by different genera like oral cavity: dominated by Streptococcus, vagina: dominated by Leptococcus, stool: dominated by Bacteroides, and skin: dominated by Staphylococcus.

References

Dinan, T. G., Stilling, R. M., Stanton, C., & Cryan, J. F. (2015). Collective unconscious: how gut microbes shape human behavior. Journal of Psychiatric Research, 63, 1-9. doi:10.1016/j.jpsychires.2015.02.021

Flint, H. J. (2012). Microbiology: Antibiotics and adiposity. Nature, 488(7413), 601-602. Retrieved from http://dx.doi.org/10.1038/488601a

The Human Microbiome Project Consortium. (2012). Structure, Function and Diversity of the Healthy Human Microbiome. Nature, 486(7402), 207-214. doi:10.1038/nature11234

Turnbaugh, P. J., Ley, R. E., Hamady, M., Fraser-Liggett, C., Knight, R., & Gordon, J. I. (2007). The human microbiome project: exploring the microbial part of ourselves in a changing world. Nature, 449(7164), 804-810. doi:10.1038/nature06244

http://superbugtees.blogspot.in/2008/10/superbug-gifts-for-geeks.html http://hmpdacc.org/ ❖

Research

Berberis asiatica Roxb: An endemic ayurvedic plant of Himalayas

□ A.C. Rathore[1], Anand K. Gupta[1], J. Jayaprakash[1], J.M.S. Tomar[1] and O.P. Chaturvedi[1]

Introduction

Berberis asiatica, also known as daru Haldi a is a spinous herb belongs to the family Berberidaceae. *B. asiatica* is native of Northern Himalayas region. This deciduous evergreen shrub is found in the temperate and sub-tropical regions of Asia, Europe, and America. This plant is commonly found at the height of 2000-3000 m especially in Himanchal Pradesh and Uttarakhand. *B. asiatica* is traditionally used in ayurvedic medicines preparations. In Ayurvedic medicinal system it has similar properties as of turmeric. *Berberis asiatica* possess many beneficial properties like antimicrobial, wound healing, hepatoprotective, anti-acne, & cytotoxicity etc. The bark and root are the main medicinal valued part of the plant. The root is extensively used in various indigenous systems of medicine for treating variety of ailments. The medicinal importance of berberine and other phytochemicals present in *Berberis asiatica* increases its demand in global market.

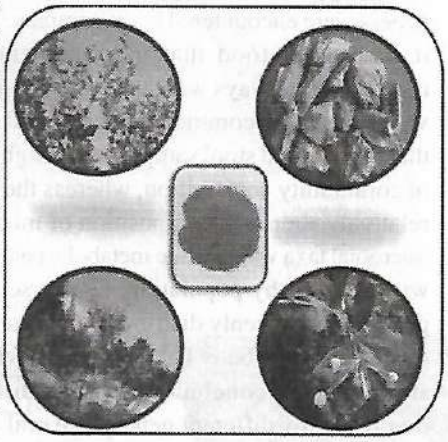

Figure 1: different parts of *B. asiatica*

Medicinal value

A large population in the world, especially in developing countries depends on their traditional knowledge system of medicine for a variety of diseases. There are several genera are used medicinally and indigenous plants are vital source for potent and powerful drugs. The roots of *B. asiatica* are used in treating ulcers, urethral discharges, ophthalmia, jaundice, fevers etc. The roots and stem contain 2.1%, and 1.3% berberine respectively. In Nepal, the bark and wood are crushed, boiled in water, strained and the liquid evaporated until a viscous mass is obtained. It is used to treat fevers and to treat conjuctivitis and other inflammations of the eyes. *B. asiatica* yields fairly large quantity of alkaloids in berberine, palmatine, jetrorrhizine, and columbamine predominat phytoconstituents. The major pharmaceutical properties of *B. asiatica* are attributed due to the presence of alkaloidal content of plant. Berberine is 8- substituted derivative of iso-quinoline. It exhibits significant role in management if various enteric infections, specially bacterial dysentery. It is known hepatoprotechtive, antidiabetic anti-inflammatory and antimicrobial agent.

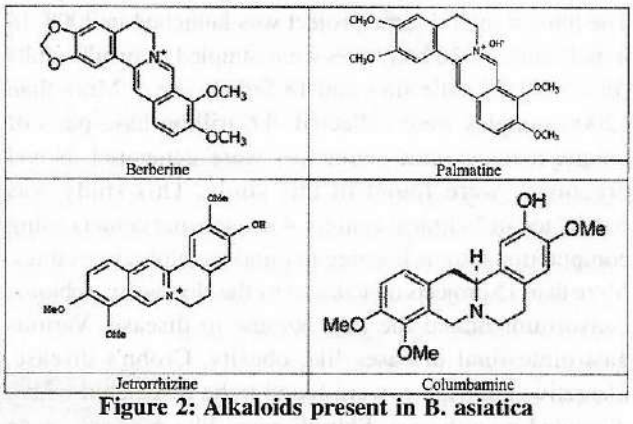

Figure 2: Alkaloids present in B. asiatica

Endemism and its over-exploitation

In India, Berberidaceae family is represented by three genera and 68 species. Largest among genera is Berberis, which has 55 species. Majority (>95%) of them are distributed in the Himalayan region. Only four species are found other than the Himalayan region, i.e., Nilgiri hills, chhota Nagpur and Pachmarhi hills of Madhya Pradesh. Traditionally ecologists have identified Berberis species as indicators of habitat degradation in the temperate region due to their thorny stem and unpalatable shoots. However, a large number of native birds and mammals are known to depend on Berberis fruits. *Berberis asiatica*, is one of the most common species in the middle hills of Western Himalaya, was known to be the alternate host of dreaded wheat rust i.e. Puccinia graminis tritici. Hence, during the early phase of green revolution there was a movement to eradicate Berberis spp. from the Himalayan region. Similarly, several species of Berberis have been eradicated from the Himalayan region in order to reclaim the hill slopes for agriculture or to extract valuable drug 'Berberidine' from the roots and stem of *B. asiatica*. ❖

Author are from [1]ICAR-Indian Institute of Soil and Water Conservation, Dehradun

ISSN : 2394-3912

Environment

Environmental Dimension of Mandatory Provision of Corporate Social Responsibility

❒ Purnima Singh
Allahabad Univ. Allahabad

The concept of Corporate Social Responsibility has a great impact on the environmental issue for the sustainable development. The environmental dimension of Corporate Social Responsibility has received a fair degree of attention in recent years, as reflected by management standards and systems such as the ISO 14000, ISO 26000 and mandatory provision of Companies Act 2013. The development of social management systems, however, is still in its infancy, mainly because of the enormous complexity of assessing the social impact of business operations.

Traditionally, environmental protection has been considered to be "in the public interest" and external to private life. Governments have assumed principal responsibility for assuring environmental management, and have focused on creating and preserving a safe environment. They have directed the private sector to adopt environmentally sound behaviour through regulations, sanctions and occasionally, incentives. When environmental problems have arisen, the public sector has generally born the responsibility for mitigation of environmental damage. In this approach, some have contended that unrestricted private sector behaviour has been considered as presenting the "environmental problem".

Today many companies have accepted their responsibility to do no harm to the environment. An earlier emphasis on strict governmental regulations has ceded ground to corporate self-regulation and voluntary initiatives. As a result the environmental aspect of CSR is defined as the duty to cover the environmental implications of the company's operations, products and facilities; eliminate waste and emissions; maximize the efficiency and productivity of its resources; and minimize practices that might adversely affect the enjoyment of the country's resources by future generations. In the emerging global economy, where the Internet, the news media and the information revolution shine light on business practices around the world, companies are more frequently judged on the basis of their environmental stewardship. Partners in business and consumers want to know what is inside a company. This transparency of business practices means that for many companies, CSR is no longer a luxury but a requirement.

The evolution of corporate social responsibility in India refers to chnages over time to time as cultural norms of corporate engagement with Corporate Social Responsibility referring to way that businesses are managed to bring about an overall positive impact on the communities, cultures, socieites and environments in which they are operating. The fundamental of Corporate Social Responsibility rest on the fact that not only public policy but also corporate should be responisble enough to address social issues. Thus companies should deal with the challenges and issues looked after to a certain extent by the states.

The National Voluntary Guidelines on Social, Environmental and Economic Responisbilities of Business (NVGs), the guidelines which are the pre-version of CSR voluntary guidelines 2009, released by Ministry of Corporate Affairs in 2011 as a directives based guidelines which have no bounded framework, it is only a documents for all businesses irrespective of their size, ownership and sector to fulfil the concept of P3 (People, Planet and Profit). After that in 2012 the Security and Exchange Board of India (SEBI) mandate the Annual Business Responsibility Reporting (ABRR), based on NVGs. The NVGs consist of a set of 9 principles, which mainly focuses on the social, economic, environmental, governance issues and development priorities. The principle 8 of this document dedicated for 'inclusive and equitable growth' acknowledging the need for sustainable development.

Regarding the new Company Act 2013 notified 1 April 2014 as the date on which the provisions of section 135 and schedule VII of the act shall come into force. The CSR spending requirement would apply to companies registered in India with a net worth in excess of Rs. 500 Crore (about \$90 m), a turnover of Rs. 1,000 Crore (about \$180 m) or more

per year or a net profit of Rs. 5 Crore or more per year has to spent 2 per cent of the average net profit made during the three immediately preceding financial years on Corporate social Responsibility activities and report the reason for spending or non-expenditure. The new act would require companies to form a Corporate Social Responsibility Committee to recommend and monitor CSR policy. The committee would submit recommendations to the corporation's board of directors, in order to undertake Schedule VII activities. Companies would be required to submit annual reports documenting their Corporate Social Responsibility activities or provide a legitimate reason as to why Corporate Social Responsibility spending is not possible.

Environmental Audit is essential to enable organisations assess the impact of their activities on the environment. The phenomenon of 'Triple bottom line' P3 (People, Planet and Profit) also states the magnitude of cloean and hygienic environment. Corporate organisations are subsystems of the larger society; they should therefore fulfil their social responsibilities by ensuring that their activities cause minimal harm to humans and the environment in which they operate. ❖

[1]To God

K.V. Subbaram

I was seethed the other day again
Steering up the stairs
And you deluded me as usual.
But why ? why ? why ?
Is it because I have a face
And you don't have one or
Is it that I die to perceive
While you try to deceive ?
I die tsternly to keep up my shape
And you have no form to conform to –
Or all forms to confound ? Tell me,
What are you ? A man, a woman
Or just nothing of creation
In everyone's frightened mind ?
You are weird beyond redemption
Are you not ? Don't just stare, lord !
Say something of your own.
I have struggled and still do
To validate my empty existnece
While, I know, you don't have to.

[2]Resurrection

K.V. Subbaram

My six-year-old asked me
Where I was last night
To which I said
I wasn't even born.

I came only this morning
And have to go tonight
Soon after sunset.
Supper. And I just have
The afternoon left
To drown into my drink
And to sink into my nap
Rather a long one that too.
But I shall return
The day-after-tomorrow.

O, Father, don't turn
Causality into casuality.

---

[1]First published in the magazine *The Illustrated Weekly of India* (Mumbai), 1979,
Included in the collection of poems *Splinters in Space-Time,* 1980.
[2]First published in the magazine *Imprint* (Mumbai), 1978.
Included in the collection of poems *Splinters in Space-Time,* 1980.
Commended by the periodical *London Magazine*.

ISSN : 2394-3912

'कहार' के संस्थाओं की गतिविधियाँ

Professor H.S. Srivastava Foundation for Science & Society Lucknow
(www.phssfoundation.org.in)

प्रोफेसर हरीशंकर श्रीवास्तव फाउण्डेशन फार साइंस एण्ड सोसायटी, लखनऊ

संस्था ने 23–24 नवम्बर, 2015 को अपनी वार्षिक आम सभा द्विवार्षिक पुरस्कार वितरण एवं पर्यावरण बदलाव की गम्भीर चुनौतियों पर दो दिन की राष्ट्रीय संगोष्ठी की। कुछ झलकियाँ छायांकनों के माध्यम से प्रस्तुत हैं।

Participation in CCSD-2015 on 23-24 Nov, 2015 at BBAU, Lucknow

Participation in UNNAYAN-2015 on 25 Nov, 2015 at Central University of Jhanrkhand, Ranchi

'कहार' आन्दोलन की भागीदार संस्था–2

पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति

(www.prithvipur.org)

पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति एक पंजीकृत स्वैच्छिक संस्था है, जो गांवों और कस्बों के टिकाऊ विकास के लिए समर्पित है। बदलती आर्थिक, राजनैतिक और प्राकृतिक स्थितियों में समाज के उपेक्षित, वंचित लोगों और क्षेत्रों को शिक्षा, नवाचार और सामूहिकता की मदद से एक खुशहाल जीवन प्रदान करने की कोशिश इस संस्था के प्रमुख लक्ष्य हैं।

समावेशी विकास की ग्रामीण पहल

(Rural Initiative for Inclusive Development)

भागीदार संस्थाऐं
प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन, लखनऊ (www.phssfoundation.org.in)
पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ (www.prithvipur.org)
विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना (कुशीनगर)

उद्देश्य • सम्यक् शिक्षा • हरित उद्योग • कम लागत की खेती • समावेशी स्वास्थ्य लाभ • मानवीय सरकार • लोक कलाएं • भागीदारी की ताकत • आनन्द की खोज

वर्तमान कार्यक्रम • 'कहार' पत्रिका का प्रकाशन • 'कहार' लाइब्रेरियों की स्थापना • 'किसान' खेती पद्धति का विकास • विवेकानन्द स्कूलों की स्थापना एवं प्रबन्धन • अभावग्रस्त लोगों की मदद • सामर्थ्य विकास

भविष्य की योजनाएं • 'आधार' नवाचार एवं कौशल विकास स्कूलों की स्थापना एवं प्रबन्धन • 'अपना स्वास्थ्य अपने हाथ' स्वास्थ्य कार्यक्रमों का विकास • 'आनन्द' पार्कों का निर्माण एवं रखरखाव • 'विकास' पाक्षिक अखबार का प्रकाशन • 'प्रकृति' वनों का विकास एवं संरक्षण • 'उल्लास' कला समूहों का निर्माण एवं संचालन

'Kahaar' Movement Participating Organisation-3

The Society for Science of Climate Change and Sustainable Environment

www.ssceindia.org

Participation in CCSD-2015 on 23-24 Nov, 2015 at BBAU, Lucknow

Grass Roots Research & Creation India (P) Ltd.

CONSULTANCY SERVICES OFFERED BY GRC INDIA (P) LTD

- Environment Impact Assessment (EIA)
- Environment Management Plan (EMP)
- Socio -Economic Impact Assessment (SIA) survey and studies
- Baseline survey and follow-up studies
- Obtaining Environmental Clearance (EC) from MoEF, GoI and State Authorities for New/ Expansion/Modernization Projects
- Solid and Hazardous Waste Management
- Promotion of Green Buildings
- Environmental Research & Development
- Conservation of water through Rain Water Harvesting (RWH)
- Evaluation of Sustainable development Project/Activities
- Preparation of Rehabilitation and Resettlement Plans
- Application of Environmental Software in construction sector and for river bed sedimentation study
- Corporate Social Responsibility Planning
- Ecology and Bio Diversity
- Clean Development Mechanism
- Ground and Surface Water Investigations, Management and Monitoring
- Sustainability Reporting Compliance Addressal Framework

SERVICES PROVIDED BY GRC INDIA TRAINING & ANALYTICAL LABORATORY

- Environmental Monitoring/Auditing
- Analysis of Ground, Surface and Waste Water
- Meteorological Monitoring (Wind speed, Wind direction, Ambient temperature, Relative humidity, Rainfall & Cloud cover)
- Soil Analysis & Testing
- Monitoring of Ambient Air Quality / Work Zone Air Quality / Source Emission / Stack Emission and Fugitive Emission
- Ambient/ Work Place/ Source/ DG Noise Monitoring
- Characterization of Soil and its Fertility
- Microbiological Analysis of Water & Waste Water
- Facilities of Bioassay of Industrial Effluent
- Bio Monitoring (Zooplankton and Phytoplankton Identification) in Surface Water/ Sea
- Adequacy and Performance Evaluation of ETP/STP

Grass Roots Research & Creation India (P) Ltd.

(An ISO 9001 : 2008, 14001:2004 & OHSAS 18001:2007
Certified Co.: Accredited by QCI/NABET: Approved by MoEF, GOI)
&
GRC INDIA TRAINING & ANALYTICAL LABORATORY
(A unit of GRC India)
An ISO 9001: 2008, ISO 14001: 2004 & OHSAS 18001: 2007 Certified Laboratory
NABL Accredited, Recognized by MoEF (GoI) under the Environment (Protection) Act, 1986
Empanelled with various State Pollution Control Boards
Regd. Office: 102, First Floor, Vardhman Mayur Market,
CSC 1, Mayur Vihar Phase - 3, Delhi - 110 096
Tele Fax : 011-22622031, www.grc-india.com
Corporate Office: F - 374 & 375, Sec-63, Noida-201 301,
Ph.: 0120-4044630, 4044660, Fax: 0120-2406519
E-mail: info@grc-india.com, cia@grc-india.com,
lab@grc-india.com, bd@grc-india.com

Save Globe

GRC India

PHSS Foundation Awardees - 2014-2015

CCSD-2015 Awardees - Young Scientist Conclave

army printing press